# सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका।

भाग ३ — सन १९०२ ई०

सम्पादक

बाबू श्यामसुन्दर दास, बी० ए.

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

# सूची

---



भाग ३ ] जनवरी १९०२ ई० [ संख्या १

## विविध वार्ता

आज इस जनवरी मास की संख्या के साथ सरस्वती के जीवनकाल का तीसरा वर्ष प्रारम्भ होता है। हमारा विचार है कि गतवर्ष में जो जो त्रुटियां इसकी अब तक रह गई हैं वे जहांतक सम्भव हो दूर कर दी जांय और इसके लेख आदि और भी रोचक हो जांय। परन्तु इन सब बातों का होना हमारे प्रेमी पाठकों की कृपा पर निर्भर है। हिन्दी के प्रेमियों से हमारी सविनय प्रार्थना है कि यदि वे यह चाहते हों कि यह पत्रिका निरन्तर चल कर हिन्दी में एक अच्छी मासिक पत्रिका के अभाव की पूर्ति करे और यथासाध्य मातृभाषा के भण्डार को भर कर पाठकों का मनोरञ्जन करे, तो उन्हें उचित है कि इसकी सहायता करने में वे कोई बात उठा न रक्खें। हमें दृढ़ विश्वास है कि हिन्दी के प्रेमीगण हमारी प्रार्थना पर ध्यान देंगे।

हिन्दी के लेखकों से भी हमारी प्रार्थना है कि नए नए सुन्दर लेखों से वे इस पत्रिका की अंगपुष्टि सदा करते रहें। हमारी पत्रिका का रोचक और अलंकृत होना इन्हीं महानुभावों पर निर्भर है। यदि वे नए नए विषयों पर लेख लिखेंगे तो भाषा का उपकार, पाठकों का लाभ और पत्रिका का गौरव होगा। इसीलिये हम इन महाशयों से ऐसी प्रार्थना करते हैं।

* * *

सन् १९०१ ई० को जातीय महासभा के साथ

इस वर्ष एक शिल्पप्रदर्शनी भी कलकत्ते में हुई थी। इस प्रदर्शनी के जन्मदाता लाहोर के बैरिष्टर लाला हरकिशुनलाल हैं। उन्हींके उद्योग और उत्साह से लाहोर की कांग्रेस में इस बात की चर्चा उठी थी और इस वर्ष शिल्प सम्बन्धी प्रस्तावों के अनुसार कार्य भी हुआ। प्रदर्शनी कलकत्ते के बिडन स्क्वायर में हुई थी। पिछली ओर तो कांग्रेस का पँडाल था, और अगली ओर दो वृत्त बड़े बड़े बने थे जिनमें दोनों पट्टियों पर दुकाने लगी थीं। प्रदर्शनी में जिन वस्तुओं की दुकानें थीं वे सब भारतवर्ष की बनी हुई थीं। समस्त प्रदर्शनी को देखकर मनुष्य आश्चर्यित हो जाता था। वास्तव में नित्यप्रति की काम की कोई ऐसी वस्तु न थी जो वहां न देख पड़ती हो। रात्रि के समय जब बिजली की रोशनी हो जाती थी तो प्रदर्शनी की शोभा देखते ही बन आती थी। हमको यह जानकर विशेष आनन्द हुआ कि इस प्रदर्शनी की जो रिपोर्ट छापी जायगी उसमें यह भी दिया जायगा कि कौन कौन वस्तुएं कहां मिल सकती हैं। निस्सन्देह इस विवरण के छपजाने से बड़ा लाभ होगा और देशहितैषी लोगों को देशी शिल्पकारी का वृत्तान्त जानने और आवश्यकतानुसार वस्तुओं के मंगवाने में बड़ा सुबीता हो जायगा। यदि ऐसी प्रदर्शनी प्रतिवर्ष कांग्रेस के साथ होती रही तो हमें आशा है कि आगे चलकर इससे बड़ा लाभ होगा। इस वर्ष की कांग्रेस में यह प्रार्थना की गई थी कि डेलीगेट लोग देशी कपड़े पहनकर कांग्रेस के अधिवेशनों में आवें। परन्तु पञ्जाब के कुछ लोगों को छोड़कर और किसी ने भी इस प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। इसका मुख्य कारण यही था कि लोगों का यह विश्वास था कि भारतवर्ष का बना हुआ अच्छा बढ़िया कपड़ा नहीं मिल सकता। पर जिन लोगों ने प्रदर्शनी देखी होगी उनकी आंखें अवश्य खुलगई होंगी और उन्हें यह ज्ञात हो गया होगा कि सब प्रकार का देशी कपड़ा बढ़िया से बढ़िया और अच्छे से अच्छा मिल सकता है। यदि भविष्यत कांग्रेसों में यह दृढ़ नियम कर दिया जाय कि सब डेलीगेट देशी ही कपड़े पहिन कर आवें तो हमें आशा है कि देश का बहुत कुछ उपकार हो सकैगा।

* *
*

भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का पता विशेष कर शिला लेखों, दानपत्रों, प्राचीन पुस्तकों और यात्रियों के वर्णनों से लगता है। परन्तु यात्री अपने भावों और विचारों को छोड़कर किसी बात को नहीं कह सकते। वे किसी बात की प्रशंसा अथवा निन्दा अपने विचारों के अनुसार करते हैं और जो बातें उन्हें रुचिकर नहीं होतीं उनका वर्णन छोड़ देते हैं। इस अवस्था में यात्रियों के वर्णनों से सच्चे इतिहास का मिलना बड़ा कठिन है। युरोपीय विद्वानों का मत है कि आर्य लोगों के भारतवर्ष में आने और उनकी क्रमिक उन्नति का पूरा पूरा पता वेद अथवा अन्य धार्मिक ग्रन्थों से नहीं लग सकता। चीनी, अर्बी और युनानी यात्रियों ने भी जो कुछ भारतवर्ष के विषय में लिखा है वह बहुत थोड़ा और अपूर्ण है। ईसवी से ४५० वर्ष पहिले हिरोडोटस ने पहिले पहल भारतवर्ष का वर्णन किया। उसके पीछे स्ट्रेबो और प्लीनी आदि ने लिखा। इनके पीछे चीन के प्रसिद्ध यात्री हुवेनशांग और फाहान भारतवर्ष में आए और बौद्धकाल तथा प्राचीन नगरों का अच्छा वर्णन छोड़ गए हैं। इनके पीछे अरब के लोगों ने भारतवर्ष के सीमाप्रदेशों का कुछ वर्णन अपने ग्रन्थों में लिखा है। अङ्गरेज़ी काल में सर जेम्स प्रिंसप ने पहिले पहल पुरातत्व की ओर विद्वानों का ध्यान दिलाया और उसके अनुसन्धान की ओर लोगों का ध्यान लगाया। तबसे अनेक अंग्रेज़ों ने इस क्षेत्र में सफलता पूर्वक कार्य करके यश प्राप्त किया है। परन्तु जितना होना चाहिए उसका अंशमात्र भी अभी नहीं हुआ है। इसलिये लण्डन की रायल एशियाटिक सोसाइटी ने यह विचारा है कि यदि

उत्तरी भारतवर्ष में प्राचीन नगरों और स्थानों का पूरा पूरा अनुसन्धान किया जाय तो इस देश का एक अच्छा और साथही सच्चा इतिहास बन सकता है। परन्तु यह कार्य केवल गवर्नमेण्ट के ऊपर छोड़ देना उचित नहीं है, क्योंकि वह जितना चाहिए उतना कर नहीं सकती है। इसलिये इङ्गलैण्ड में एक कमेटी बनाई जायगी जो इस कार्य को करेगी और जिसमें सब देश के लोग सम्मिलित होंगे। इस बड़ी कमेटी के आधीन भिन्न भिन्न देशों में अलग अलग कमेटियां होंगी जो निज निज सामर्थ्य के अनुसार पुरातत्व का कार्य करेंगी। हमको इस कमेटी के कार्यों में विशेष सफलता की आशा है। यह अवसर है जब भारतवर्ष के विद्वान अपने देश को बहुत लाभ पहुंचा सकते हैं। यदि हमारे यहां के संस्कृतज्ञ पण्डित लोग अङ्गरेज़ी पढ़े होते और इन पुरातत्वसम्बन्धी विषयों में अनुराग रखते तो न जाने इन प्रशंसनीय कार्यों में कितनी सहायता कर वे देश का भला कर सकते।

* * *

कलकत्ते के लोगों को मेटकाफ हाल लाइब्रेरी का वृतान्त अवश्य ज्ञात होगा। नाम को तो यह पबलिक लाइब्रेरी है, पर वहां जाकर पुस्तक देखने के लिये भी चार्ज देना पड़ता है। अब इस पुस्तकालय और भवन आदि को भारत गवर्नमेण्ट ने २० हज़ार रुपया नगद और ६ हज़ार वार्षिक पर मोल ले लियाहै। गवर्नमेण्ट का बिचार है कि जितनी पुस्तकें गवर्नमेण्ट के पुस्तकालय में हैं वे सब भी इसमें सम्मिलित कर दी जांय और यह पुस्तकालय इम्पीरियल लाइब्रेरी के नाम से स्थापित किया जाय, तथा इसका ऐसा प्रबन्ध हो कि जिसमें सर्व साधारण जाकर वहां पुस्तकों का अध्ययन कर सकें। हम लार्ड कर्ज़न को इस उपकार के लिये धन्यवाद देते हैं। अबतक गवर्नमेण्ट के पुस्तकालय की पुस्तकों के देखने का सौभाग्य केवल चुने हुए सर्कारी नौकरों को प्राप्त था, परन्तु इस नवीन प्रबन्ध से आशा है कि जो लोग चाहेंगे लाभ उठा सकेंगे।

* * *

काश्मीराधिपति स्वर्गवासी महाराज रणवीर सिंह ने अपने जीवनकाल में काशी में एक संस्कृत पाठशाला स्थापित की थी और उसके लिये ३२०० वार्षिक का व्यय स्वीकार किया था। समय पाकर उस पाठशाला की अवस्था मन्द होगई और उसका प्रबन्ध बिगड़ गया। अब महाराज प्रतापसिंह ने उसका प्रबन्ध हिन्दु कालिज कमेटी को सौंप दिया है, जिससे हमको आशा है कि वह विद्यालय अच्छे ढंग पर चल निकले और संस्कृत विद्या का विशेष प्रचार कर सके। ऐसा सुनने में आया है कि कालिज कमेटी ने सब पण्डितों को सूचना दे दी है कि पहिले मार्च से वे अपने को निज निज पद से च्युत समझें और जिन्हें आगे काम करने की इच्छा हो, वे अपने आवेदन पत्र कमेटी के पास भेजें, उनपर वह विचार करैगी। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि उस पाठशाला के अध्यापकों में कई ऐसे थे जो उपयुक्त रीति पर काम नहीं कर सकते हैं; परन्तु इस प्रकार से कमेटी को काम करना उचित न था। इससे विशेष असन्तोष फैलने की सम्भावना है। यह भी सुनने में आया है कि कमेटी ने किसी बंगाली महाशय को, जो पहिले किसी कालिज में प्रोफ़ेसर थे, इस विद्यालय का प्रिन्सिपल नियत किया है। हम इन महाशय को नहीं जानते, अतएव हम इनकी विद्या आदि के विषय में कुछ नहीं कह सकते। परन्तु आश्चर्य हमको इस बात पर होता है कि काशी में जहां संस्कृत भाषा का पठन पाठन सब स्थानों से विशेष हो रहा है और जो समस्त संसार में संस्कृत विद्या के लिये प्रसिद्ध हो रहा है, कमेटी को कोई ऐसा विद्वान न मिला जो रणवीर पाठशाला का प्रिन्सिपल हो सकै! बंगालियों का उच्चारण सब लोगों पर प्रगट है—स और श, ण और न आदि का इनमें भेद ही नहीं माना जाता। हमको स्मरण है कि हिन्दू कालिज में संस्कृत

के अध्यापक के नियत करते समय बंगाली इसी लिये नहीं चुने गए थे कि उनका उच्चारण ठीक नहीं होता और वह पद महाराष्ट्र देशीय एक पण्डित को दिया गया था। हमारी समझ में नहीं आता कि कमेटी ने इस बेर इन बातों का विचार क्यों नहीं कर लिया और अपने स्थिर-सिद्धान्त का अनुकरण क्यों छोड़ दिया। यदि सब बातें निश्चित न हो गई हों तो हमें आशा है कि कमेटी इन बातों पर विचार करलेगी।

***

गत १९ अकतूबर को मि. स्यानटोस डूमों अपने बेलून पर चढ़कर ३० मिनिट में ५ मील का चक्कर लगा आए। उस समय हवा प्रति घण्टे बारह मील के हिसाब से चलती थी। परन्तु मि. डूमों ने बेलून को इस प्रकार अपने अधीन कर रक्खा था, कि जिधर चाहते थे उसे ले जाते थे। इससे अब आशा है कि इस विद्या में शीघ्र विशेष उन्नति हो जायगी और लोग बेलून की यात्रा विशेष कर किया करेंगे। इस कार्य को सफलता पूर्वक करने के लिये मि. डूश ने मि. डूमा को १५००० रु० पुरस्कार दिया जिसको उन्होंने उसी समय पुलिस के अध्यक्ष को इसलिये दे दिया कि वह गरीब दुखियों में उसे बांट दें। धन्य उत्साह और धन्य उदारता!

---

## भवभूति

प्राचीन कवियों, पण्डितों और नाटककारों के विषय में 'हिन्दी प्रदीप' को छोड़कर हिन्दी के अनुरागी प्रायः कभी कुछ लिखते ही नहीं। हिन्दी का साहित्य इस प्रकार के निबन्धों से शून्य सा हो रहा है। यदि कभी कोई कुछ लिखने का साहस भी करता है तो उसपर लोग बेहतरह बिगड़ उठते हैं और कहने लगते हैं कि इनकी समीक्षा उचित नहीं है। जैसे और और बातों में बँगला और मराठी भाषा का साहित्य हिन्दी के साहित्य से बढ़ा हुआ है, वैसे ही वह इस विषय में भी है। बाबू सतीशचन्द्र विद्याभूषण, पण्डित विष्णुकृष्ण शास्त्री चिपलूणकर और पण्डित माधवराव वेंकटेश लेले इत्यादि विद्वानों ने, अपनी अपनी देशभाषा में भवभूति के विषय में, बहुत कुछ लिखा है। प्रोफ़ेसर विलसन, सर मानियर विलियम्स, कोलब्रुक, भाण्डारकर और दत्त इत्यादि ने भी भवभूति और उसके नाटकों की प्रशंसा करने में अपनी लेखनी का सदुपयोग किया है। परन्तु, हिन्दी में, जहां तक हम जानते हैं, भवभूति के विषय में किसीने कुछ नहीं लिखा। हां, पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री ने विष्णु शास्त्री के भवभूति विषयक मराठी निबन्ध का हिन्दी में अनुवाद अवश्य किया है।

२—विष्णु शास्त्री ने कालिदास, भवभूति, बाण सुबन्धु और दण्डी इन पांच प्राचीन कवियों पर मराठी में पांच निबन्ध लिखकर उन पांचों के समाहार का नाम 'संस्कृत कविपञ्चक' रक्खा है। शास्त्री महाशय ने भवभूति को छोड़ शेष चार कवियों के समय का निरूपण भी यथाशक्य किया है और जिसके विषय में जहां तक सम्भव था गवेषणा भी की है। परन्तु भवभूति के समय के विषय में उन्होंने बहुत ही स्वल्प कहा है। उनके कथन का अनुवाद यह है। वे कहते हैं, "केवल मृच्छकटिक, प्रबोधचन्द्रोदय, नागानन्द इत्यादि नाटकों में और दशकुमारचरित इत्यादि ग्रन्थों में उस समय के जनसमूह की स्थिति का कुछ परिचय मिलता है। इसलिये भवभूति को कालिदास का समसामयिक मानने की अपेक्षा जिस समय ये ग्रन्थ निर्म्मित हुए हैं उस समय के आस पास उसका अस्तित्व स्वीकार करना विशेष युक्तिसङ्गत है"।

विष्णु शास्त्री ने जिनका नाम दिया है वे प्रायः सातवीं शताब्दी के ग्रन्थ हैं। जैसे इन ग्रन्थों में दीर्घ-समासों की प्रचुरता है वैसे ही भवभूति के नाटकों में भी है। जैसे इनमें बैाद्ध

धर्म्मावलम्बियों के चरित्र का कहीं कहीं चित्र खींचा गया है, वैसे ही भवभूति के मालतीमाधव में भी खींचा गया है। इसीलिये विष्णु शास्त्री ने शूद्रक, कृष्ण मिश्र, बाल और दण्डी के समय के सन्निकट भवभूति का होना अनुमान किया है। इतना ही लिख कर वे चुप हो गए हैं, भवभूति के समय का विशेष निरूपण उन्होंने नहीं किया।

३—राजतरङ्गिणी के चतुर्थ तरङ्ग में लिखा है—

कविवाक्पतिराजश्रीभवभूत्यादिसेवितः।
जितो ययौ यशोवर्म्मा तद्गुणस्तुतिवन्दिताम्॥
श्लोक १४५

अर्थात्, वाक्पतिराज और भवभूति आदि कवियों से सेवा किए गए यशोवर्म्मा ने (ललितादित्य से) पराजित होकर उस विजयी का गुण गाया। यशोवर्म्मा नाम का राजा सन् ६९३ से ७२९ तक कन्नौज के राज्यासन पर आसीन था। इस यशोवर्म्मा को काश्मीर के राजा ललितादित्य ने परास्त किया और भवभूति को अपने साथ वह काश्मीर ले गया। इससे यह सिद्ध है कि भवभूति अष्टम शताब्दी के आरम्भ में कान्यकुब्जाधिप यशोवर्म्मा की सभा में उसका आश्रित हो कर विद्यमान था। अतएव "यह कहना समुचित नहीं जान पड़ता कि भवभूति को राजाश्रय था; यदि उसे राजाश्रय होता तो उसके तीनों नाटकों का प्रयोग कालप्रियनाथ की यात्रा ही के समय क्यों होता"? विष्णु शास्त्री की यह उक्ति बिलकुल निराधार है। भवभूति को राजाश्रय अवश्य था। कालप्रियनाथ की यात्रा ही के समय उसके नाटकों का क्यों प्रयोग हुआ, इसका कोई कारण होगा। भवभूति ने यशोवर्म्मा की सभा में स्थान पाने के पहिले ही शायद अपने नाटक लिखे हों; अथवा यशोवर्म्मा के पराजय के अनन्तर काश्मीर जा कर और वहां से राजाश्रयहीन होकर स्वदेश को लौटने पर शायद उसने उन्हें बनाया हो; अथवा राजधानी की अपेक्षा यात्राओं में अधिक जनसमूह एकत्र होने के कारण उसी अवसर पर शायद उसने अपने नाटकों का प्रयोग किया जाना प्रशस्त माना हो।

४—(क) कुछ वर्ष हुए डाक्टर बूलर को एक 'गौडवहो' (गौडवध) नामक प्राकृत काव्य मिला। इस काव्य को मिस्टर पाण्डुरङ्ग ने बम्बई में छपा कर प्रकाशित किया है। इसके कर्ता वही वाक्पतिराज हैं जो यशोवर्म्मा की सभा में विद्यमान थे। इन्होंने 'गौडवध' में यशोवर्म्मा का विस्तृत वृत्तान्त लिखा है और तद्द्वारा गौड़देश के राजा का पराजय वर्णन किया है। इस काव्य मे वाक्पतिराज ने अपनी कविता के सम्बन्ध में यों लिखा है—

प्राकृत

भवभूइजलहिनिग्गयकव्वामयरसकणा इव स्फुरन्ति।
जस्स विसेसा अज्जबि बियडेसु कहापबन्धेसु॥

संस्कृत

भवभूतिजलधिनिर्गतकाव्यामृतरसकणा इव स्फुरन्ति।
यस्य विशेषा अद्यापि विकटेषु कथाप्रबन्धेषु॥

अर्थात् 'भवभूतिरूपी जलनिधि से निकले हुए काव्यरूपी अमृत के कणों के समान जिसके निबन्धों में अनेक विशेष विशेष गुण अद्यापि चमक रहे हैं'। इससे भी वाक्पतिराज के साथ भवभूति का यशोवर्म्मा के यहां अष्टम शताब्दी के प्रारम्भ में होना सूचित होता है।

(ख)—कई वर्ष हुए हमारे मित्र पण्डित माधवराव वेंकटेश लेले को मुम्बई में एक प्राचीन हस्तलिखित मालतीमाधव की पुस्तक मिली। इसमें 'भट्टकुमारिलशिष्यभट्टभवभूति' यों लिखा है। "गौड़बध" की भूमिका में भी लिखा है कि इन्दौर में मालतीमाधव की एक पुस्तक मिली है जिसमें भी 'इति कुमारिलशिष्यकृते' लिखा है। कुमारिल भट्ट सप्तमशताब्दी के अन्त में हुए हैं; अतएव भवभूति का अष्टम शताब्दी के आदि में होना सब प्रकार सुसङ्गत है।

(ग)—शङ्कर दिग्विजय में लिखा है, विद्धशालभञ्जिका और बालरामायण आदि के कर्ता राज-

शेखर के यहां शङ्कराचार्य्य गए थे और उनके बनाए नाटक आचार्य्य ने देखे थे। इससे राजशेखर और शङ्कर की समकालीनता प्रकट होती है। राजशेखर अपने बालरामायण में लिखते हैं—

बभूव वल्मीकभुवः कविः पुरा
ततः प्रपेदे भुवि भर्तमेदुताम्।
स्थितः पुनर्यो भवभूतिरेखया
स वर्तते सम्प्रति राजशेखरः॥

अर्थात्—पहिले वाल्मीकि कवि हुए; फिर भर्तृहरि ने जन्म लिया; तदनन्तर जो भवभूति नाम से प्रसिद्ध था वह अब राजशेखर के रूप में वर्तमान है। शङ्कराचार्य अष्टम शताब्दी के अन्त में हुए हैं; अतएव राजशेखर का अस्तित्व भी उसी समय में सिद्ध है। जब यह सिद्ध है तब ऊपर दिए गए श्लोक के अनुसार भवभूति का राजशेखर से कुछ ही काल पहिले अर्थात् अष्टम शताब्दी के आरम्भ में होना भी सिद्ध है।

(घ)—सप्तम शताब्दी के मध्य में होनेवाले बाण कवि ने अपने हर्षचरित में जिन कवियोंके नाम दिए हैं, उनमें भवभूति का नाम न दिया जाना भी बाण के अनन्तर भवभूति का होना सिद्ध करता है।

५—भवभूति ने महावीरचरित, मालतीमाधव और उत्तररामचरित—ये*तीन नाटक लिखे हैं। इनमें से अन्तिम में अल्प और पहिले के दोनों नाटकों में किञ्चित् विशेष रूप से उसने अपने जन्मस्थान आदि का वृत्तान्त लिखा है। महावीरचरित में अपने विषय में जो कुछ भवभूति ने लिखा है वह यह है—

"अस्ति दक्षिणापथे पद्मपुरं नाम नगरम्। तत्र केचित्तैत्तिरीयिणः काश्यपाश्चरणगुरवः पंक्तिपावनाः पञ्चाग्नयो धृतव्रताः सोमपीथिन उडुम्बरा ब्रह्मवादिनः प्रतिवसन्ति। तदामुष्यायणस्य तत्रभवतो वाजपेययाजिनो महाकवेः पञ्चमः सुगृहीतनाम्नो भट्टगोपालस्य पौत्रः पवित्रकीर्तेर्नीलकण्ठस्यात्मसम्भवः श्रीकण्ठपदलाञ्छनो भवभूतिर्नाम जातूकर्णी पुत्रः।

श्रेष्ठः परमहंसानां महर्षीणामिवाङ्गिराः।
यथार्थनामा भगवान् यस्य ज्ञाननिधि गुरुः॥"

अर्थात्—दक्षिण में पद्मपुर नाम नगर है, जहां यजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा का अध्ययन करनेवाले, व्रतधारी, सोमयज्ञकारी, पंक्तिपावन, पञ्चाग्निक, ब्रह्मवादी, काश्यप गोत्रीय उडुम्बर ब्राह्मण रहते हैं। उनके यहां वाजपेय-यज्ञ करनेवाले पुण्यशील भट्टगोपाल नामक महाकवि का प्रादुर्भाव हुआ। भट्टगोपाल के पौत्र, और पवित्रकीर्ति पिता नीलकण्ठ तथा माता जातूकर्णी के पुत्र, श्रीकण्ठ उपाधिभूषित भवभूति का वहीं जन्म हुआ। परमहंसों में श्रेष्ठ और महर्षियों में अङ्गिरा के समान जिस (भवभूति) के भगवान् ज्ञाननिधि* नामा गुरु यथार्थ में ज्ञाननिधि ही हैं।

इसीका सारांश विष्णु शास्त्री ने, अपने भवभूति नामक निबन्ध में, इस प्रकार लिखा है—

"दक्षिण देश के अन्तर्गत पद्मपुर नगर में उडुम्बर नामक तपोनिष्ठ ब्राह्मण रहते हैं। उन्होंके वंश में गोपालभट्ट का जन्म हुआ। गोपालभट्ट के नीलकण्ठ नामक पुत्र हुआ और नीलकण्ठ के भवभूति नामक। भवभूति की माता का नाम जातूकर्णी। पीछे से यह कवि भट्ट श्रीकण्ठ नाम से भी पुकारा जाने लगा।"

परन्तु इस विषय में उन्होंने और अधिक चर्चा नहीं की; इतनाही कह कर वे चुप हो गए हैं।

६—महावीरचरित से जो पंक्तियां हमने उद्धृत

* डाक्टर भाण्डारकर लिखते हैं कि शार्ङ्गधर पद्धति में—
निरवद्यानि पद्यानि यदि नाट्यस्य का क्षतिः।
भिक्षुकक्षविनिक्षिप्तः किमिक्षुर्नीरसो भवेत्॥
यह श्लोक भवभूति के नाम से अभिहित है, जिससे सूचित होता है कि इस कवि ने इन तीन नाटकों के अतिरिक्त और भी कोई ग्रन्थ लिखा है, क्योंकि यह श्लोक इन तीनों पुस्तकों में नहीं पाया जाता।

* कुमारिल भट्ट ही का दूसरा नाम ज्ञाननिधि तो नहीं ?

की हैं वही पंक्तियां कुछ परिवर्तित रूप में, मालती-माधव में भी हैं। वहां उनका आरम्भ इस प्रकार हुआ है–'अस्ति दक्षिणापथे विदर्भेषु पद्मनगरं नाम नगरम्"–जिससे यह सिद्ध होता है कि दक्षिणापथ के विदर्भ देश में पद्मपुर अथवा पद्मनगर था। विदर्भ का आधुनिक नाम बरार है; परन्तु बरार-प्रान्त में पद्मपुर का कहीं पता नहीं है। यह नगर इस समय अस्तित्वहीन हो गया जान पड़ता है। मालतीमाधव के टीकाकार जगद्धर ने पद्मपुर और पद्मावती में अभेद बतलाया है, यह ठीक नहीं। पद्मावती, मालतीमाधव में वर्णन किए गए मालती और माधव के विवाहादि का घटनास्थल है। डाक्टर भाण्डारकार का मत है कि भवभूति का जन्मस्थान बरार में कहीं चाँदा के पास रहा होगा। वहां कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा वाले अनेक महाराष्ट्र ब्राह्मण अब तक रहते हैं। उनकी देशस्थ संज्ञा है और उनका आपस्तम्ब सूत्र है। चाँदा के दक्षिण और दक्षिण-पूर्व उसी वेद और उसी सूत्रवाले अनेक तैलङ्ग ब्राह्मण भी रहते हैं। भवभूति ने अपने नाटकों में गोदावरी का जो वर्णन किया है, उससे भासित होता है कि वह उस नदी से विशेष परिचित था। पद्मपुर शायद गोदावरी के तटपर ही अथवा कहीं उसके पासही रहा होगा।

७—मालतीमाधव की घटनाएं पद्मावती नगरी में हुई हैं। कवि ने इस नगरी के चिन्हों का कुछ कुछ पता दिया है। चतुर्थ अङ्क के अन्त में माधव से उसका सखा मकरन्द कहता है—"तदुत्तिष्ठ पारासिन्धुसम्भेदमवगाह्य नगरीमेव प्रविशावः" जिससे विदित होता है कि पारा और सिन्धु नाम की दो नदियों के सङ्गम पर पद्मावती नगरी बसी थी। इस बात को कवि ने नवम अङ्क के आरम्भ में पुनर्वार पुष्ट किया है। वहां लिखा है—

'पद्मावतीविमलवारिविशालसिन्धु–
पारासरित्परिकरच्छलतो बिभर्ति।
उत्तुङ्गसौधसुरमन्दिरगोपुराट्ट—
संघट्टपाटितविमुक्तमिवान्तरीक्षम् ॥

सैषा विभाति लवणा ललितोर्म्मिपंक्ति—
रम्रागमे जनपदप्रमदाय यस्याः।
गोगर्भिणोप्रियनवोलपमालभारि—
सेव्योपकण्ठविपिनावलयो विभान्ति ॥

यहां एक लवणा नदी का भी नाम आया है जिससे सूचित होता है कि पद्मावती के पासही लवणा भी बहती थी। इसी अङ्क में कुछ दूर आगे है—

अयञ्चमधुमतीसिन्धुसम्भेदपावनोभगवान् भवानी-
पतिरपौरुषेयप्रतिष्ठः सुवर्णबिन्दुरित्याख्यायते।

इससे यह भी जाना जाता है कि वहां मधुमती नामकी भी नदी थी और उसके तथा सिन्धु के सङ्गम पर सुवर्णबिन्दु नामक शङ्कर का मन्दिर था। जनरल कैनिंहम और पण्डित वामन शिवराम आपटे का मत है कि ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत मालवा प्रान्त का नरवर नगर ही प्राचीन पद्मावती है। नरवर सिन्ध (प्राचीन सिन्धु) पर बसा है और उसके पासही पार्वती (प्राचीन पारा) लोन (प्राचीन लवणा) और मधुवर (प्राचीन मधुमती) नदियां बहती हैं। यह पहचान बहुत ठीक है; परन्तु पारा और सिन्धु के सङ्गम से नरवर कोई २५ मील है। इसी लिये डाक्टर भाण्डारकर कहते हैं कि नरवर से हट कर कहीं दूसरे स्थल पर पद्मावती रही होगी। विक्रमादित्य के समय से ही और प्रान्तों की अपेक्षा मालवा प्रान्त ने विद्यावृद्धि में विशेष ख्याति प्राप्त की थी। इसीसे राजमन्त्रियों तक के लड़के विदर्भ देश से पद्मावती में आन्वीक्षिकी विद्या (न्याय शास्त्र) पढ़ने आते थे। सम्भव है विदर्भ से कान्यकुब्ज जाते समय, अथवा काश्मीर से लौटते समय, भवभूति पद्मावती ही के मार्ग से गया हो और उस नगर की तथा उसके निकट बहनेवाली निदयों की शोभा प्रत्यक्ष देख कर मालतीमाधव में उनका वर्णन उसने किया हो। पद्मावती में विद्या की विशेष चर्चा थी, अतः भवभूति का वहां जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं।

८–विष्णु शास्त्री चिपलूणकर ने अपने निबन्ध में यह बात सिद्ध की है कि जैसे एकही अर्थ के व्यञ्जक पृथक् पृथक् पद्य कालिदास ने अपने पृथक् पृथक् ग्रन्थों में लिखे हैं वैसे भवभूति ने नहीं लिखे। अर्थात् भवभूति ने एकही भाव का पिष्टपेषण करके उसे अनेक स्थलों में पद्यबद्ध नहीं किया। यह हम भी मानते हैं। परन्तु शास्त्री जी के इस कहने से कि–"विचारों के विषय में, हम, यहां पर, एक बात और कहना चाहते हैं। वह यह कि वे स्वयं कवि के हैं; और काव्यों का किञ्चिन्मात्र भी आधार उनको नहीं–" हम सहमत नहीं हैं। शास्त्री जी का आशय शायद यह है कि भवभूति के नाटकों में उसके पूर्ववर्ती कवियों की छाया तक नहीं पाई जाती। स्वयं शास्त्री जी को एक ऐसा उदाहरण मिला है जिसमें भवभूतिकृत मालतीमाधव के—

"वारं वारं तिरयति दृशोरुद्गमं बाष्पपूरः"

इस श्लोक का भाव और कालिदास कृत मेघदूत के–

"त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलायाम्*"

इस श्लोक का भाव एकही है। परन्तु यहां पर शास्त्री जी ने भवभूतिरूपी शिष्य को कालिदास रूपी गुरु से बढ़ गया बतलाकर अपने कथन को दृढ़ किया है और कहा है कि इस अर्थसाम्यता से उनके मत में बाधा नहीं आसकती। हम यह नहीं कहते कि भवभूति ने कालिदास अथवा अपने और किसी पूर्ववर्ती कवि के विचारों की चोरी की है; परन्तु, हां, हम यह अवश्य कहते हैं कि भवभूति, कालिदास और शूद्रक आदि की अनेक उक्तियों में परस्पर साम्यता है। बाबू सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम. ए., ने इस विषय के बहुत उदाहरण दिए हैं; परन्तु हम थोड़ेही उदाहरण देकर सन्तोष करेंगे। देखिए—

१। कालिदास–कुवलयितगवाक्षां लोचनैरङ्गनानाम्।
रघुवंश, स ११।

भवभूति–कटाक्षैर्नारीणां कुवलयितवातायनमिव।
मालतीमाधव, अं २।

२। कालि०—मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोधः।
रघुवंश, स १४।

भव०–दुःखसंवेदनायैव रामे चैतन्यमाहितम्।
उत्तररामचरित, अं १।

३। कालि०—गुणैर्हि सर्वत्र पदं निधीयते।
रघुवंश, स ३।

भव०–गुणाः पूजास्थानं गुणिषु नच लिङ्गं नच वयः
उत्तररामचरित, अं ४।

४। कालि०—पर्यायपीतस्य सुरैर्हिमांशोः
कलाक्षयः श्लाघ्यतरो हि वृद्धेः।
रघुवंश, स ५।

भव०–कलाशेषा मूर्तिः शशिन इव नेत्रोत्सवकरी।
मालतीमाधव, अं २।

५। कालि०—तमवेक्ष्य रुरोद सा भृशं
स्तनसम्बाधमुरो जघान च।
स्वजनस्य हि दुःखमग्रतो
विवृतद्वारमिवोपजायते।
कुमारसम्भव, स ४।

भव०—सन्तान वाहीन्यपि मानुषाणां
दुःखानि सद्बन्धु वियोगजानि।
दृष्टे जने प्रेयसि दुःसहानि
स्रोतः सहस्रैरिव संप्लवन्ते।
उत्तररामचरित, अं ४।

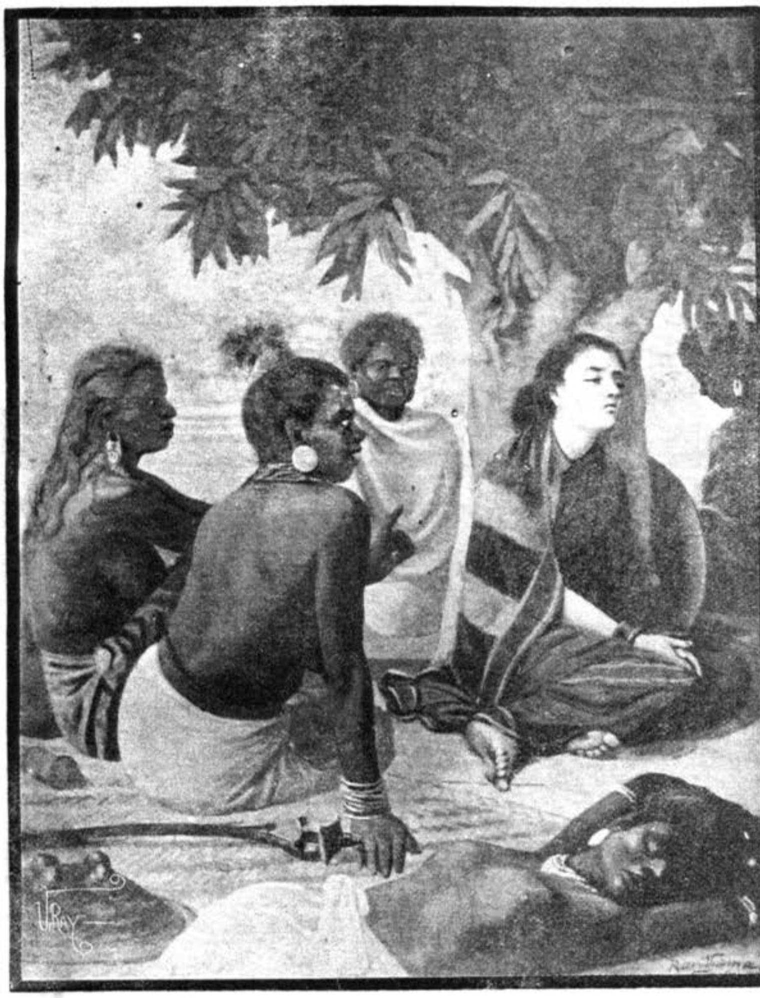
६। शूद्रक–न ह्याकृतिः सुसदृशं विजहाति वृत्तम्।
मृच्छकटिक, अं १।

भव०–शरीर निर्म्माणसदृशो ननु अस्य अनुभावः
वीरचरित, अं १।

भिद्येत वा सद्वृत्तमीदृशस्य निर्माणस्य।
उत्तरचरित, अं ४।

७। क्षेमें०-सत्तासदसदोर्नास्ति रागःपश्यति रम्यताम्।
स तस्य ललितो लोके यो यस्य दयितो जनः।
अवदानकल्पलता, १०।९९।

* शकुन्तला और विक्रमोर्वशी में भी कालिदास ने इसी प्रकार की उक्ति कही है।



अशोकवन में राक्षसियों से रक्षित सीता जी।

भव०-अकिञ्चिदपि कुर्व्वाणः सैाख्यैर्दुःखान्यपोहति।
तत्तस्य किमपि द्रव्यं यो हि यस्य प्रियो जनः ।
उत्तररामचरित, अं ६ ।

कालिदास, शूद्रक और क्षेमेन्द्र ये तीनों कवि भवभूति से पहले हुए हैं। इनकी उक्तियों की छाया भवभूति के पद्यों में, अनेक स्थलों पर पाई जाती है। यह चाहे इन कवियों के काव्यों के पढ़ने से भवभूति के हृदय में उत्पन्न हुए संस्कार-विशेष का फल हो; चाहे यैाहीं घुणाक्षरन्याय से पूर्व कवियों की उक्तियों का भाव उनकी उक्तियों में आ गया हो। कुछ हो क्यों न हो, कहीं कहीं साम्यता अवश्य है। [ शेष आगे ।

--ले० महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

———

## राजा रविवर्म्मा

इस संख्या के आरम्भ में जिन सैाम्यदर्शन पुरुष का चित्र दिया गया है, भारतवर्ष में ऐसे बहुत कम लोग होंगे जो उनका नाम न जानते हों, अथवा जिन्होंने उनके बनाए चित्रों को न देखा हो। 'प्रवासी' * नाम के बङ्गभाषा में प्रकाशित मासिक पत्र के योग्य सम्पादक बाबू रामानन्द चट्टोपाध्याय, एम. ए., को राजा रविवर्म्मा ने 'प्रवासी' तथा 'सरस्वती' में अपने चित्रों के प्रकाशित करने की आज्ञा दी है। आज 'सरस्वती' के तीसरे वर्ष के प्रारम्भोत्सव में राजा रविवर्म्मा कृत कई चित्रों का उपहार तथा उन्हीं महानुभाव का उपदेशपूर्ण जीवनचरित हम सरस्वती के पाठकों की भेंट करते हैं। आशा है कि चित्रों के दर्शन तथा चरित्र के अनुशीलन से हमारे पाठकों का केवल मनोरञ्जन ही नहीं होगा, वरन् वे इतना समझ जांयगे कि भारतवासी भी ललित कलाओं में दूसरे देशवासिओं का सामना करने के योग्य हैं।

राजा रविवर्म्मा का जन्म त्रिवाङ्कोड़ के एक सम्भ्रान्त क्षत्रियकुल में हुआ था। उनका कुल वंशपरम्परा से त्रिवाङ्कोड़ के राजकुल से घनिष्ठ सम्बन्ध रखता आया है। राजा साहब ने सन् १८४८ के मई मास में त्रिवन्द्रम नगर के समीप किलिमानूर नाम के एक गांव में जन्म लिया था। उनके पूर्वपुरुषों ने विपत्ति के समय त्रिवाङ्कोड़ राज की युद्धक्षेत्र में सहायता की थी, इस कारण किलिमानूर की विशाल जागीर उन्हें पुरस्कार में मिली थी और वह तभी से रविवर्म्मा के परिवार के अधिकार में चली आती है।

इस निबन्ध में 'पूर्वपुरुष', 'परिवार' आदि वाक्यों से त्रिवाङ्कोड़ की भाषा में चलित अर्थ को लेना चाहिए। वहां बहिन का पुत्र (भांजा) अपने मामा की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होता है। पुत्र अपने पिता की सम्पत्ति को नहीं पाता। इस कारण 'पूर्वपुरुष' से मामा के मामा, उनके भी मामा, इत्यादि समझना चाहिए। परिवार के अर्थ में मातुल, उनकी भगिनी, भगिनी की सन्तति, आदि जानिए। परिवार अथवा गृह के स्वामी से मातुल का उल्लेख हो रहा है, ऐसा समझना चाहिए।

रविवर्म्मा के दो और भाई और एक बहिन हैं। रविवर्म्मा ही सबसे बड़े हैं। ये भ्राता भगिनी सभी स्वभावशिल्पी हैं। इनकी माता उमा अम्बा बाई सुशिक्षिता स्त्री थीं। कविता रचने में उन्होंने त्रिवाङ्कोड़ प्रान्त में कवियश प्राप्त किया था। रविवर्म्मा के बाल्यकाल में उतनी अङ्गरेज़ी शिक्षा की चाल नहीं थी। उस समय की रीति के अनुसार घरही पर उन्हें संस्कृत की शिक्षा मिली थी और अपने गुरूजी के पास उन्होंने रामायण महाभारत आदि श्रेष्ठ ग्रन्थों को पढ़ा था। परन्तु बाल्यावस्था में व्याकरण की अपेक्षा दिवाल और भूमि पर कोयले वा खड़िया से देवी देवताओं के चित्र खींचने ही में उन्हें अधिकतर रुचि थी। उनकी इस शिल्पकला की प्रतिभा के बाल्याभास से

* 'प्रवासी' भी प्रयाग से प्रकाशित होता है और इंडियन प्रेस ही में छपता है।

घर के सब लोग उकता गए, केवल राजा साहब के मामा राजा राजवर्म्मा ही इस कार्य से विरक्त नहीं होते थे। राजा राजवर्म्मा बड़े प्रतिभाशाली पुरुष थे। उनके और और गुणों में चित्रविद्या भी एक था। वे अपने चित्तविनोदार्थ चित्र खींचा करते और इसीसे रविवर्म्मा की रुचि उसी ओर देखकर वे बहुत प्रसन्न होते थे। जब रविवर्म्मा को रेखाङ्कण में कुछ कुछ अभ्यास हो गया तो उनके मातुल ने उनको जल मिलाकर रङ्गों से चित्र खींचना सिखलाया। आजकल जैसे अङ्गरेज़ी रङ्ग के बक्स और ब्रश सर्वत्र मिलते हैं, उस समय वैसा नहीं था। राजा राजवर्म्मा आपही सब आवश्यकीय सामग्री बना लेते थे। अपने जीवनकाल के शेषभाग तक उन्होंने कई प्रकार के रङ्गों का बनाना आविष्कृत किया था, परन्तु अब उस कार्य का करनेवाला कोई न रहने के कारण, और विशेषकर बिलायती सामग्रियां अब बहुतायत से मिलने के कारण, राजवर्म्मा के परिश्रम का फल उनकी मृत्यु के साथ लुप्त होगया।

तेरह वर्ष की अवस्था में रविवर्म्मा अपने मामा के साथ त्रिवाङ्कोड़ की राजधानी त्रिवन्द्रम् आए। उनके बनाए हुए कई चित्र उनके मामा ने महाराज को भेंट किए। महाराज इस उपहार से बहुत प्रसन्न हुए। उस समय भद्रसमाज में लोग चित्रविद्या को अपमानसूचक समझते थे। परन्तु ज्ञानालोकप्राप्त महाराज का मत साधारण लोगों से नहीं मिलता था। बालक के कार्य में उज्वल भविष्यत का पूर्वाभास उनको लख पड़ा, और वे तुरन्त रविवर्म्मा के सहायक और उत्साहदाता हो गए।

सन् १८६६ में, जब रविवर्म्मा १६ वर्ष के हुए, तो त्रिवाङ्कोड़ की मृत बड़ी रानी की छोटी भगिनी से उनका बिवाह हुआ। हम पहिले कह चुके हैं कि त्रिवाङ्कोड़ का उत्तराधिकारीसूत्र मातुलकुलावलम्बी है। इस कारण बड़ी रानी के अर्थ में महाराज की भगिनिओं में जो सबसे बड़ी होती हैं उन्हींका बोध होता है। महाराज की बहिनें ही बड़ी वा छोटी रानी कहलाती हैं और उन्हींको रानी का सब सम्मान मिलता है। उन्हींके पुत्र सिंहासन के अधिकारी होते हैं। महाराज की स्त्री अथवा पुत्र किसी गिनती में नहीं आते। वर्तमान महाराज को कोई सहोदरा भगिनी नहीं थीं, इससे राज्यपद के उत्तराधिकारी पाने के लिये उन्होंने दो दत्तक बहिनें ले ली थीं। वेही बड़ी और छोटी रानियां कहलाती थीं। बड़ी रानी निस्सन्तान ही मर गईं। छोटी रानी भी आठ वर्ष के लगभग पहिले परलोक को सिधार चुकी थीं। इनको दो पुत्र थे। त्रिवाङ्कोड़ के रीत्यनुसार पहिले पुत्र एलियाराजा वा युवराज और दूसरे पुत्र प्रथम राजकुमार कहलाए। यदि इस समय जीवित रहते तो एलियाराजा ही आधुनिक महाराज के अवर्त्तमान में महाराज होते, परन्तु कुछ दिन हुए कि दोनो भाइयों का देहान्त हो गया है। ये दोनों कुमार रविवर्म्मा के एक मौसेरे भाई के पुत्र थे। वंशपरम्परा के क्रम से रविवर्म्मा के मामा, वा उनके परिवारस्थ लोग, त्रिवाङ्कोड़ के महाराजाओं के जन्मदाता पिता हुए हैं। अस्तु, वर्तमान महाराज के दोनो भांजों की मृत्यु होने के कारण त्रिवाङ्कोड़ का सिंहासन उत्तराधिकारीरहित हो गया। लार्ड कर्ज़न साहब की अनुमति से थोड़े दिन हुए कि महाराज ने रविवर्म्मा की दो दौहित्रियों को बड़ी रानी और छोटी रानी के पद पर स्थित किया है। ये दोनों अभी निरी बालिका हैं। बयस प्राप्त होकर ये जब पुत्रवती होंगीं, तो इन्हींके किसी एक पुत्र को वर्त्तमान महाराज की राजगद्दी मिलेगी।

सन् १८६८ में त्रिवाङ्कोड़ के महाराज ने थियोडोर जैनसेन नामी एक अङ्गरेज़ चित्रकार को अपने और आत्मीय कुटुम्बादिकों के चित्र खींचने के लिये बुलवाया। इन्हींके आगमनकाल से रविवर्म्मा की प्रतिभा नए मार्ग पर धावित होने लगी। जैनसेन साहिब का स्वभाव कुछ

क्रोधी था, और जब वे चित्र खींचा करते उस समय किसीको वे अपने पास नहीं आने देते थे। परन्तु महाराज के कहने सुनने से साहिब ने रविवर्म्मा को अपने पास रहने की आज्ञा दे दी थी। तेल के रङ्ग की सहायता से कैसा सुन्दर फल मिल सकता है, यह देखकर रविवर्म्मा विस्मित हो गए और तब से तैल-चित्रकार होने की उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली। तैल-चित्र खींचने की सब सामग्रियां उन्होंने मँगवालीं और जैनसेन साहिब के चित्रों को आदर्श मानकर रातदिन परिश्रम करने लगे। धीरे धीरे उन्होंने महाराज और महारानी के चित्र बनाए और अपनी कल्पना से भी विचार कर कईं एक चित्र खींचे। सन् १८७३ में मन्द्राज के उस समय के गवर्नर लार्ड होबर्ट के उत्साह से मन्द्राज में एक ललित-कला-प्रदर्शनी (Fine Arts Exhibition) स्थापित हुई थी। त्रिवाङ्कोड़ के महाराजा बहादुर ने वहां के अङ्गरेज़ रेसिडेण्ट के कहने पर रविवर्म्मा के भी दो चित्र इस मेले में भेज दिए। शिल्पी स्वयं भी प्रदर्शनी देखने गए और वहां अपने एक चित्र के लिये उन्हें गवर्नर का दिया हुआ एक सोने का पदक (तमगा) मिला। इस चित्र में यह चित्रित हुआ था कि एक नेयर जाति की स्त्री चमेली की माला से अपने केशों को गूंथ रही है। लोगों ने इस चित्र का इतना आदर किया कि कुछ दिनों तक नगर भर में जहां तहां इसीकी चर्चा होने लग गई थी। लर्ड होवर्ट ने रविवर्म्मा को बुलवा भेजा और उनके चित्रों की विशेष प्रशंसा कर उन्हें अध्यवसाय द्वारा यशोलाभ करने के लिये उत्साहित किया। रविवर्म्मा के त्रिवन्द्रम् लौटने पर महाराजा साहब ने उनपर प्रसन्न होकर उन्हें बहुत से बहुमूल्य उपहारों से सम्मानित किया।

गर्वनर साहब ने जिस चित्र के लिये सोने का तमगा दिया था, वही चित्र फिर आस्ट्रिया देश की राजधानी वियेना नगर में International Exhibition में प्रदर्शित हुआ था। वहां से भी उन्हें तमगा और प्रशंसा पत्र मिले। दूसरे वर्ष, अर्थात् १८७४ में, मन्द्राज की शिल्पप्रदर्शनी में रविवर्म्मा ने फिर एक स्वर्णपदक प्राप्त किया। इस बार के चित्र का विषय यह था—एक तामील स्त्री सरवत् (एक प्रकार का बाजा) बजा रही है। भारत सम्राट श्रीमान सातवें एडवर्ड जब सन् ७५ में युवराज रूप में भारतवर्ष पधारे थे तो त्रिवाङ्कोड़ के महाराज ने तामील स्त्री-वाला चित्र और दो और भी चित्र उनकी भेंट किए। उसपर युवराज ने तीनों चित्रों की प्रशंसा करके कहा था कि जिसने युरोप में शिक्षा नहीं पाई है ऐसे शिल्पी के लिये ये चित्र बहुत ही प्रशंसार्ह हैं। १८७६ की मन्द्राज प्रदर्शनी में रविवर्म्मा ने "शकुन्तला-पत्र-लेखन" भेजा। फिर भी पहिला पुरस्कार उन्हीं को मिला और उस समय के गवर्नर डियुक आफ़ बकिंगहम ने उसे तुरन्त मोल ले लिया। श्रीनगर, जिला पुर्निया के साहित्य-प्रेमी राजा कमलानन्द सिंह जी ने दिसम्बर १९०१ की सरस्वती में शकुन्तला की ओर से दुष्यन्त के नाम एक प्रेमपत्र रोलाछन्द में लिखा था। उस कविता के साथ राजा रविवर्म्माकृत "शकुन्तला-पत्र-लेखन" का फोटो-चित्र प्रकाशित होचुका है। हमारे पुराने पाठक उसे पा चुके हैं। रविवर्म्मा के पहिले किसी भारतवासी शिल्पी ने प्राचीन संस्कृत साहित्य में वर्णित नायक नायिका वा प्रसिद्ध प्रसिद्ध घटनाओं का तैलचित्र नहीं बनाया था। अब रविवर्म्मा की संस्कृत शिक्षा काम में आई। वे संस्कृत साहित्य से अपनी रुचि के अनुसार चित्रनिर्वाचन करने लगे। सन् १८७८ में मन्द्राज के गवर्नमेंट हौस में रक्षित होने के लिये ड्यूक अफ़ बकिंगहम को देख कर उनका एक चित्र बनाने की आज्ञा रविवर्म्मा को मिली। ड्यूक का यह चित्र रविवर्म्मा के सर्वोत्कृष्ट चित्रों में गिना जाता है। मन्द्राज के गवर्नमेंट हौस में इसीके आसपास युरोपियन नामी चित्रकरों के किए हुए चित्र टंगे हुए हैं। परन्तु यह उनमें किसीसे भी निकृष्ट नहीं वरं बढ़ कर ही है। रविवर्म्मा ने

इतने अल्प समय में डूक आफ़ बकिंगहम का चित्र बनाया था कि उन्होंने एक बार रविवर्म्मा से कहा कि युरोप के किसी विख्यात चित्रकार से अपना चित्र खिंचवाते समय उसके सम्मुख मुझे १८ बेर बैठना पड़ा था, तौभी आपके चित्र की तुलना में वह चित्र सत्यानुरूप आधा भी सफल नहीं हुआ था।

मन्द्राज से रविवर्म्मा के लैाटने के दे। मास पीछे त्रिवाङ्कोड़ के महाराज का परलोकवास हे। गया। उनके अन्तर उनके भाई महाराज हुए। उनके इच्छानुसार रविवर्म्मा ने "सीता की परीक्षा" नामक एक बड़ा चित्र बनाया। इस चित्र में, सीता के चरित्र में दोषारोपण होने के कारण माता पृथ्वी उन्हें लिए हुए अन्तर्हित हे। रही हैं। उस समय बड़ौदा राज्य के प्रधान मंत्री सर तञ्जोर माधवराव त्रिवाङ्कोड़ आए हुए थे। वे इस चित्र के। देख कर ऐसे प्रसन्न हुए कि महाराज गायकवाड़ के लिये उन्होंने उसे मोल ले लिया ग्रैार अपने लिये भी एक सुन्दर चित्र लिया जिसमें एक नेयर कन्या सारंगी में सुर मिला रही है। शेषोक्त चित्र के। माधवराव ने सन् १८८० में पूना की शिल्प प्रदर्शनी में दिखाया था। रविवर्म्मा के। गायकवाड़-सुवर्ण-पदक इसके पुरस्कार में दिया गया। बम्बई के गवर्नर सर जेम्स् फ़र्गुसन साहिब इस चित्र के। देख कर बड़े ग्रानन्दित हुए, ग्रैार वह सर टी. माधव राव की सम्पत्ति होने के कारण, उसकी एक प्रतिलिपि बनाने की उन्होंने ग्राज्ञा दी। रविवर्म्मा ने बना कर गवर्नर के। स्वयं उसे उपहार में दिया। सर जेम्स् ने उनकी निपुणाई की गुणग्राहिता के चिन्ह-स्वरूप उनके। इंगलेण्ड के राजपरिवार के फोटो-ग्राफों का बहुमूल्य एलबम दिया था।

सन् १८८१ में राजा रविवर्म्मा अपने छोटे भाई सी. राजा राजवर्म्मा के सहित निमन्त्रित हे। कर बड़ौदा गए थे ग्रैार वहां गायकवाड़ राजपरिवार के लोगों तथा रेज़ीडंट मेलविल साहिब ग्रादि के चित्र उन्होंने बनाए थे। वहां से महाराज भवनगर भी उन्हें कई चित्र बनाने के लिये बुला-कर ले गए थे।

भवनगर से लैाटकर उन्हें दारुण शोक उठाना पड़ा। चित्रविद्या के बालशिक्षक भक्तिभाजन उनके मामा का देहान्त हे। गया। ये महात्मा अपने जीवनकाल के शेषभाग में भगवद्भक्ति में ही अपना समय व्यतीत करते थे। यदि इनसे शिक्षा ग्रैार उत्साह न मिलता ते। रविवर्म्मा ग्राज़ रविवर्म्मा कदापि नहीं हे। सकते थे।

इसके ग्रनन्तर रविवर्म्मा के। मैसूर के भूतपूर्व नृपति सर चमराजेन्द्र ग्रोदायर निमन्त्रित कर अपने यहां लिवा ले गए। ये संगीत ग्रैार चित्रविद्या के बड़े अनुरागी थे। मैसूर में तीन मास रह कर रविवर्म्मा ने महाराज ग्रैार उनकी सन्ततियों के चित्र बनाए थे। महाराज ने ग्रैार ग्रैार उपहारों में रविवर्म्मा के सम्मानार्थ उन्हें एक हाथी भी दिया था। कलकत्ते ग्रैार लण्डन की प्रदर्शनियों में भी रविवर्म्मा का सम्मान हुआ था ग्रैार उन्हें चांदी के तगमें ग्रैार सार्टिफिकट मिले थे। इसी समय उनकी माता का भी स्वर्गवास हे। गया। राजा साहब शोकाच्छन्न हृदय से व्रतावलम्बी हे। कर अपने किलिमानूर के महल में एक वर्ष तक रहे। सन् १८८२ में महाराज गायकवाड़ नीलगिरि गए ग्रैार वहां से रविवर्म्मा के। अपने बड़ोदास्थ नए प्रासाद के। भूषित करने के लिये उन्होंने निमन्त्रण दिया। इन चित्रों में रामायण ग्रैार महाभारत के चुने चुने सुन्दर १४ दृश्य थे। इस कठिन काम के। ग्रारम्भ करने के पहिले रविवर्म्मा उत्तरीय भारतवर्ष में देशाटन करने गए। उद्देश्य यह था कि पुरानी पत्थर ग्रादि की मूर्त्तियों के दर्शन से प्राचीन काल के राजा रानियों के वस्त्राभूषण का उन्हें ज्ञान लाभ हे।। परन्तु इसमें उनका मनोरथ सफल नहीं हुआ था। कई सौ वर्ष तक उत्तरी भारत में मुसलमानों की प्रधानता के कारण राजा साहब के उद्देश्य के लिये हिन्दुओं के पुराने जे। कुछ चिन्हादि थे सब लुप्त हे। गए थे।



राजा रुक्माङ्गद और मोहिनी ।

भारतवर्ष के नाना प्रान्तों में भांति भांति के लोग सदाकाल बसते आए हैं, और सबके वस्त्र आभूषण एक दूसरे से भिन्न प्रकार के थे और हैं। इस कारण रविवर्म्मा समझ गए कि सारे भारतवर्ष के लोगों को रुचिकर हो ऐसे वस्त्र अपने चित्रों में दिखाना बहुत ही कठिन है।

अस्तु, घर लैाटकर महाराज गायकवाड़ के बताए हुए कार्य को उन्होंने आरम्भ कर दिया, और दो वर्षों में चैादहों चित्रों को समाप्त कर सन् १८९० में वे उन्हें बड़ौदा ले गए। कई दिन तक ये चित्र प्रकाश्य स्थान में दिखाए गए थे। उन्हें देखने के लिये बम्बई प्रान्त के अनेक मनुष्य गए थे और बड़ौदा में बड़ी धूम मच गई थी। कारण यह था कि इसके पहिले कैनवैस पर तेल के रंगों में किसीने ऐसे जीवितवत् हृदयग्राही चित्र भारतीय श्रेष्ठ महाकाव्यों से निर्वाचित कर नहीं अंकित किए थे। हिन्दुस्तान में इन्हीं चित्रों के सहस्त्रों फोटोग्राफ़ बिक गए है। सर्वसाधारण में इन चित्रों का इतना आदर देखकर रविवर्म्मा ने बम्बई में अपने व्यय से एक लिथो का छापाखाना स्थापित किया, और अपने चित्रों को छोटे आकार में नाना रंगों में छाप कर साधारण मनुष्यों के हाथ तक उन्हें पहुंचा दिया। इस रीति से वे अपने देशवासियों के अन्तःकरण में शिल्पानुराग उत्पन्न करने में समर्थ हुए। उनका मत है कि पैाराणिक और धर्म्मसम्बन्धी चित्र लोगों के हृदय को जितना स्पर्श कर सकते हैं, दूसरे वैसा नहीं कर सकते। उनके इस उद्यम ने आशातीत फल उठाया है। आज दिन हिमालय से कुमारिका तक घर घर में उन के बनाए चित्र आदर सहित रक्खे जाते हैं और छोटे बड़े सब लोग उनसे परिचित हो गए हैं। इस प्रेस से रविवर्म्मा कृत लग भग सैा चित्र भांति भांति के रंगों में छप कर प्रकाशित हुए हैं। उनके बनाए अब भी बहुत से ऐसे चित्र हैं कि जिनका फोटो उतारना वा लिथो में छापना दुष्कर होने के कारण वे अब तक साधारण जनों तक नहीं पहुंच सके हैं। बाजारों में उनके जो चित्र बिकते हैं, वे सब उनके सर्वोत्कृष्ट चित्र नहीं हैं। उनके श्रेष्ठ चित्र प्रायः सभी बिक कर त्रिवाङ्कोड़ से बाहर चले गए हैं, और इसी कारण उनके फोटो भी अब नहीं मिल सकते। बहुत से उत्तमोत्तम चित्रों की नकल अब नहीं मिलती। रंगीन चित्रों के फोटो से मूल चित्र की सुन्दरता की छाया मात्र देख पड़ती है, उससे शिल्पी की प्रतिभा का पूरा परिचय नहीं मिल सकता। इस संख्या में रविवर्म्मा कृत कई चित्रों का हाफटोन चित्र बनवाकर हमलोग प्रकाशित करते हैं। विराट राजसभा में द्रौपदी महाराज गायकवाड़ की सम्पत्ति है। राजासाहब ने 'प्रवासी' पत्र के लिये उसका फोटोग्राफ लिवाकर भेज दिया है। इस चित्र में द्रौपदी, कीचक, भीमसेन, आदि सहज ही में पहिचान पड़ते हैं। "राजा रुक्माङ्गद और मोहिनी" नामक चित्र का संक्षेप वर्णन आवश्यक है। रुक्माङ्गद की दो रानियां थीं। छोटी रानी व्यभिचारिणी और क्रूर प्रकृति की थी। राजा किसी समय उससे वचन हार चुके थे कि तू जो कहेगी सो मैं करूंगा। दुष्टा रानी ने एक बार समय पा कर राजा को इस पण की सुध दिला कर कहा कि आप या तो बड़ी रानी के गर्भ से उत्पन्न अपने एकमात्र पुत्र का प्राण बध किजिए, नहीं तो आज एकादशी है, सम्मुख रखे हुए भोजन को पा कर व्रत भंग कीजिए। राजा सत्य-सङ्कल्पी थे और एकादशी का व्रत भङ्ग करना भी महा पाप समझते थे। उनका पुत्र उन्हें इस पाप का भागी होने से रोक कर अपना गला कटवा डालने पर उतारू हुआ। बड़ी रानी एक बुढ़िया दासी की गोद में मूर्च्छित पड़ी है। राजा दोनो ओर से महा सङ्कट में पड़ कर हाथ में खड्ग ले कर आकाश की ओर नेत्र उठाए हुए भगवान को पुकार रहे हैं। मोहिनी पाषाण की नाईं बड़ी निष्ठुरता से उन्हें अपना पण पूरा करने को कह रही है। राजप्रासाद के देवमन्दिर में इस मर्म्मभेदी दृश्य का अभिनय हो रहा है। "हंसदमयन्ती"

नामक चित्र में दमयन्ती हंस के मुख से राजा नल की भेजी हुई प्रेमवार्त्ता तद्गतचित्त से सुन रही है। शकुन्तला-पत्र लेखन के विषय में हम ऊपर कह आए हैं। उसमें शकुन्तला कण्व मुनि के आश्रम में दुष्यन्त का पत्र लिख रही है। पास ही दोनो सखी अनसूया ग्रैार प्रियम्वदा बैठी हैं। थोड़ी दूर पर एक मृगछौना खड़ा है। भारतवासी मनुष्यों के जीवनव्यापार सम्बन्धी दस चित्र खींच कर रविवर्म्मा ने शिकागो की प्रदर्शनी में भेजे थे। वहां से उनके लिये उन्हें दे। तमगे ग्रैार प्रशंसापत्र मिले थे। अमेरिका के कई प्रसिद्ध समाचारपत्रों में इन चित्रों की प्रशंसा छपी थी। आज तक रविवर्म्मा को जितने तमगे ग्रैार प्रशंसापत्र मिले हैं, उनकी सूची बनानी सहज नहीं है, इतनाहीं कहना अलम् होगा कि जहां जहां उनके चित्र प्रदर्शित हुए, वहीं उन्हें पुरस्कार ग्रैार सम्मान मिला।

बम्बई में जब से उन्होंने छापाखाना खोला है, तब से वर्ष के भीतर वे कभी बम्बई ग्रैार कभी त्रिवाङ्कोड़ में रहते हैं। इस वर्ष के प्रारम्भ में वे उदयपुर के महाराणा साहब द्वारा निमन्त्रित हुए थे। महाराणा ने दरबार में रक्षित पुराने चित्रों में से अपने चार नामी पूर्वपुरुषों के चित्र बनवाए हैं। इनमें से एक चित्र प्रातःस्मरणीय स्वदेशप्रेमी राजपुताना के गैारवसूर्य वीरकुलों के आराध्य महाराणा प्रताप सिंह भी हैं। उदयपुर के मनोहर दृश्य को देखकर रविवर्म्मा मोहित हो गए। उनके सहोदर राजा राजवर्म्मा ने कई दृश्यों के सुन्दर चित्र उतारे हैं। रविवर्म्मा के इन छोटे सहोदर के विषय में यदि कुछ न कहा जाय तो शिल्पी महाशय का यह संक्षिप्त जीवनचरित असम्पूर्ण रह जायगा। ये अपने अग्रज के नित्य सहचर ग्रैार सहकारी हैं। ये भी अग्रज की भांति बालककाल ही से संगीत ग्रैार चित्रविद्या में स्वाभाविक योग्यता रखते हैं ग्रैार बाल्यावस्था में अंग्रेज़ी पढ़ने से जब अवकाश मिलता तो ये संगीत ग्रैार चित्रविद्या ही में अपना समय काटते। अपने सहपाठियों में सदा प्रथम स्थान पाते थे। पूर्वकथित एलियाराजा ग्रैार प्रथम राजकुमार भी इन्हींके साथ पढ़ा करते थे। पाठ समाप्त होने के अनन्तर इन्होंने भी अपने बड़े भाई की वृत्ति को स्वीकार किया। रविवर्म्मा ने विचारा कि यदि दोनो भाइयों को किसी युरोपीय शिल्पी से रंग मिलाने आदि की शिक्षा मिलती तो वे बहुत उपकार पाते, इसलिये आज कल के ढंग की चित्र विद्या में निपुण फ़ाङ्क ब्रुक्स नामी एक चित्रकार को उन्होंने अपना शिक्षक नियुक्त किया ग्रैार उनसे बहुत सी शिक्षा पाई। रविवर्म्मा अपने मन से गढ़ कर मानसी चित्रों के खींचने में सिद्धहस्त हैं ग्रैार अपने युरोपीय शिक्षक से सीखे हुए उनके भाई राजवर्म्मा को प्राकृतिक दृश्य (Landscape) ग्रैार वास्तविक मनुष्यों के चित्र बनाने में असाधारण योग्यता है। इनको मन्द्राज ग्रैार बम्बई की प्रदर्शनियों में बहुत से पुरस्कार मिले हैं। दोनो भ्राता यह कह कर सदा दुःख प्रकाश करते हैं कि त्रिवाङ्कोड़ के कठिन सामाजिक नियम के कारण वे प्रधान प्रधान शिल्प सीखने के स्थानों को जाकर नहीं देख सकते ग्रैार न उनसे अधिक शिक्षा लाभ कर सकते हैं। परन्तु जहां तक सम्भव हो सके, इस त्रुटि को दूर करने के लिये वे सब युरोपीय चित्रकरों के बनाए हुए बहुमुल्य चित्रों को कभी कभी मोल ले कर मंगवा लेते हैं ग्रैार आज कल युरोप ग्रैार अमेरिका में शिल्पसम्बन्धी क्या क्या उन्नतियां नित्य प्रति हो रही हैं, उनसे जानकारी रखने के लिये अङ्गरेज़ी ग्रैार युरोपीय नाना भाषाग्रों में प्रकाशित शिल्पसम्बन्धी पत्रादि मंगवाया करते हैं।

भारतवासियों की सब प्रकार की शिक्षाग्रों ग्रैार मानसिक उन्नति के लिये जो जो महानुभाव मार्ग दिखाने वाले हैं उनमें राजा रविवर्म्मा को कैान सा स्थान देना चाहिए, इसका विचार करना भारतवर्ष के भविष्यत्काल में जन्म लेने वाली सन्तति पर निर्भर है। हम उस विषय में कुछ नहीं

कहना चाहते। भारतवर्ष में बड़े बड़े कवि, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ, इमारत (स्थपति) ग्रैार सङ्गीत-विद्याओं में निपुण लोग हो चुके हैं, परन्तु इस रत्नगर्भा भारत वसुन्धारा में योग्य चित्रकार ग्रब तक नहीं जन्मा था। रविवर्म्मा ने इस ग्रभाव को पूर्ण किया है वा नहीं, हम लोग नहीं कह सकते। सच तो यों है कि ग्राज कल के दिनों में चित्र-विद्या-रूप श्रेष्ठ कला की ऐसी ग्रवनति ग्रैार दुर्गति हो रही है, कि यदि रविवर्म्मा ग्रपनी प्रतिभा से इसे फिर गैारवन दिलाते तो इसका पुनरुज्जीवन निस्सन्देह बहुत धीरे धीरे होता। यदि कभी भारतवर्षीय चित्रविद्या का इतिहास लिखा जाय, तो वे आधुनिक युग में इसके जन्मदाता कहला कर पूजित होंगे।

रविवर्म्मा की प्रकृति बड़ी धीर ग्रैार नम्र है। वे दयालु ग्रैार दानशील भी हैं। दरिद्रों के ग्रभाव मोचन में उनके हाथ खुले हुए हैं। जब वे चित्राङ्कण नहीं करते, वा उसके विषय में चिन्ता नहीं करते हैं तो ग्रंग्रेज़ी में ग्रपनी ज्ञान वृद्धि के लिये ग्रंग्रेज़ी पढ़ा करते हैं (क्योंकि ग्रंग्रेज़ी उन्होंने बहुत ग्रधिक ग्रवस्था में सीखनी ग्रारम्भ की थी), ग्रथवा किसी प्रिय संस्कृत काव्य की ग्रालोचना में ग्रपना समय बिताते हैं। वे ग्रपने यश से गर्वित नहीं होते, वरन् मुक्तकण्ठ से कहा करते हैं कि ज्यों ज्यों उनका ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों त्यों उन्हें ज्ञान पड़ता है कि मानुषी नेत्रों से छिपी हुई प्रकृति के महारहस्यों के समूह में से बहुत थोड़ा सा ग्रंश उन्होंने जान पाया है।

इस संख्या में जो चित्र प्रकाशित होते हैं, उन्हें छोड़ ग्रैार भी कई ग्रच्छे ग्रच्छे चित्रों के ब्लाक बन रहे हैं, ग्रैार उन्हें ग्रगली संख्याओं में पाठकों उपहार देने की हमारी इच्छा है।

—ले० पार्वतीनन्दन।

## श्री गुरु अंगदजी

प्यारे पाठको! गत वर्ष की सरस्वती में ग्रापलोगों ने दसों गुरु के चित्र ग्रैार गुरु नानक जी के चरित्र को देखाही होगा। उसी लेख में गुरु ग्रङ्गद जी का भी कुछ उल्लेख हुग्रा है। ग्रापलोगों को स्मरण होगा कि गुरु नानक जी जिस समय ग्रपने जीवन के शेष दिवस ईरावती नदी के तीर कर्तारपुर में बिता रहे थे, उस समय लहना नामक एक वैष्णव खत्री से, जो वैष्णव देवी के दर्शन को जा रहा था, इनसे भेंट हुई ग्रैार जो इनके उपदेशों पर ऐसा मुग्ध हुग्रा कि इनका दीक्षित शिष्य हो गया, तथा गुरु नानक जी ने इसका नाम गुरु ग्रङ्गद रख इसे गुरुग्रों की गद्दी दी।

ग्राज इस लेख में उन्हीका चरित्र वर्णन किया जायगा। इनके पिता का नाम फेरुमल* था जो जाति के खत्री थे। जिस समय ग्रङ्गद जी का जन्म हुग्रा उस समय भारत के शासन की लगाम सिकन्दर लोदी नाम के बादशाह के हाथ में थी। संवत् १५६१ (सन् १५०४ ई०) को वैशाख बदी ११ चार घड़ी रात रहे माता केसभराई के गर्भ से मत्ते की सराय, ज़िला फिरोजपुर में हमारे चरित्रनायक ने जन्म लिया। पुत्र के उत्पन्न होने पर पिता ने यथा रीति बधाई बजवाई ग्रैार पुत्र का नाम "लहना" रक्खा। लहना जी बाल्यावस्था ही में बड़े शान्त गम्भीर तथा सुशील थे। कहावत प्रसिद्ध ही है कि "पूत के लक्षण पालने में देख पड़ने लगते हैं"। यह प्रकृति का साधारण नियम है कि भावी महात्मा की प्रतिभा का ग्राभास क्रमशः बाल्यावस्था ही में उदय होता है। हमारे भावी ज्ञानी गुरु ग्रङ्गद जी बाल्यवस्था ही में उत्तम गुणों से सम्पन्न थे।

* फेरुमल जी कुछ पढ़े लिखे भी थे ग्रैार उनकी ग्रार्थिक ग्रवस्था भी ग्रच्छी थी। वे फोरोजपुर के हाकिम के यहां नैाकरी करते थे॥

संवत् १५७६ में जब लहना जी की अवस्था केवल पन्द्रह वर्ष की थी, उनके पिता ने इनका विवाह खेवीजी से, जो इलाका मांझा, गांव खंडैारा में रहती थीं, कर दिया और वे स्त्री के साथ सुख से दिन बिताने लगे। कुछ काल के अनन्तर इनकी धर्म्मपत्नी के गर्भ से दो पुत्र तथा दो कन्याएं उत्पन्न हुईं जिससे ये अपने दिन लाड़ चाव से बिताने लगे।

संवत् १५८३ में लहना जी के पिता स्वर्ग को सिधारे। अतएव हिन्दूरीत्यनुसार सब गृहस्थी का भार इन्हींपर आ पड़ा। यह परिश्रम कर जो द्रव्योपार्जन करते, उसका अधिक भाग गरीबों तथा अतिथियों के भरण पोषण में खर्च कर डालते थे। इनके पिता पहिले मुअसर ही में वास करते थे, परन्तु संवत् १५७८ में बाबरी शाह ने इस ग्राम पर प्रबल वेग से आक्रमण किया, तथा उसके दुर्दान्त सैनिकों ने इस गांव में मन मानी लूट की*। अतएव फेरुमल अपने परिवार की इस विपत्ति से रक्षा करने के लिये लहना के ससुराल व्यास नदी के तीर खंडैारा ग्राम को भाग गए तथा वहीं उनकी मृत्यु भी हुई। इस गांव के निवासी सब देवी के उपासक थे, अतएव इस कहावत के अनुसार "तुख़्म तासीर सोहबत असर" फेरुमल जी भी देवी के उपासक हो गए।

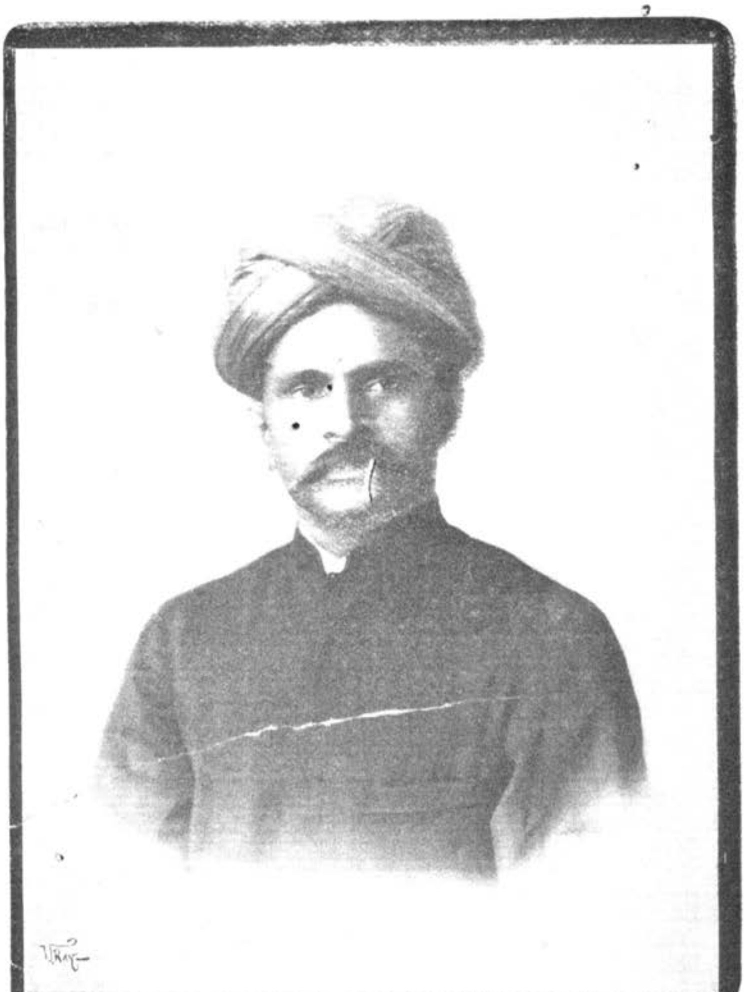
पिता के देहान्त होने पर पुत्र ने भी उसी मत का अवलम्बन किया, तथा वे देवी जी का विशेष पूजन और आराधन करने लगे। उनका अधिकांश समय उपासनावृत्ति में बीतता था और प्रति वर्ष भक्तजनों के साथ वैष्णव देवी के दर्शनों को वे जाया करते थे।

एक समय का वृत्तान्त है कि लहना जी इसी प्रकार वैष्णव देवी के दर्शन को जा रहे थे कि मार्ग में गुरु नानक जी की प्रशंसा इन्होंने सुनी और इस पर इनको गुरु नानक जी के दर्शन की प्रबल इच्छा उत्पन्न हुई। अतएव वह वैष्णव देवी न जाकर कर्तारपुर की ओर गए। संयोगवश कहीं नानक जी भी उसी राह से कर्तारपुर की ओर जा रहे थे, मार्ग में ही दोनों महाशयों की आपस में भेट हो गई। लहना जी ने गुरु नानक को कभी नहीं देखा था, इसलिये उन्होंने उन्हें नहीं पहचाना और मित्रभाव से, जैसा पथिकों में प्रायः ऐसी दशा में उत्पन्न हो जाता है, दोनों महाशय मार्ग में चलने लगे।

जब दोनों महाशय कर्तारपुर पहुंचे, तब लहना जी गुरु नानक का परिचय पाने पर अत्यन्त लज्जित हुए और उनके पैरों पर गिर अपने अपराध की क्षमा मांगने लगे। गुरु नानक जी ने विविध प्रकार से इनकी खातिरदारी की और यह मालूम होने पर कि वे वैष्णव देवी जा रहे थे, कहा कि केवल एक निराकार, परब्रह्म, परमेश्वर की ही उपासना करनी योग्य है, क्योंकि वही सब का कर्त्ता और विधाता है, उसे त्याग कर दूसरों की आराधना करनी सीधे राह को छोड़ पेंचीले राह में भटकना है। गुरु नानक जी के उपदेशों से लहना जी ऐसे मोहित हुए कि वैष्णव देवी न जाकर गुरु नानक जी की ही सेवा में रह गए और उनपर विशेष श्रद्धाभक्ति रखने लगे।

गुरु नानक जी ने अपनी मृत्यु के अनन्तर अपने सत्य सिद्धान्तों के प्रचार का भार अपने किसी ऐसे शिष्य को दे जाना चाहा कि जो उन्हीं की नाईं अविचलित रह कर तथा समस्त कठिनाइयों को सह कर अपने कर्तव्य साधन में यत्नवान् रहे और उन्होंने लहना जी की श्रद्धा भक्ति तथा धर्म्मनिष्ठा देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर इन्हींको अपने पीछे गुरु की गद्दी देनी स्थिर की। परन्तु इस कठिन कार्य का भार देने के पूर्व लहना जी की सत्यनिष्ठा तथा सहनशीलता की परीक्षा लेनी चाही। अतएव उन्होंने अपने सब

* बाबरशाह के सैन्यकों ने मुअसर ग्राम को लूट कर उजाड़ कर दिया था। वह उजाड़ ग्राम अब टीले के सदृश दिखाई देता है। संवत् १८६२ में दीवान मोहकम चन्द ने गुरु अङ्गद जी के नाम से एक गुरुद्वारा यहां बनवा दिया जो अब तक वर्तमान है।



सी. राजा राज वर्म्मा ।

शिष्यों की परीक्षा लेनी आरम्भ की। एक दिन का वृत्तान्त है कि नानक जी की शय्या पर एक मरा हुआ चूहा पड़ा था। अपने पुत्रों तथा शिष्यों को उसे उठा कर फेंकने को उन्होंने कहा। इस आज्ञापालन करने में पुत्र तथा शिष्यगण सबही हिचकिचाए, पर हमारे दृढ़भक्त लहना जी ने उसी क्षण अपने गुरु की आज्ञा पाते ही उस चूहे को उठा कर फेंक दिया। इसके अनन्तर एक दिन फिर जान बूझ कर नानक जी ने सुलेमानी पत्थर का प्याला नरदमें फेंक दिया और अपने पुत्र तथा शिष्यों को आज्ञा दी कि उसे निकाल लाओ। परन्तु इस कार्य को किसीने न किया। इस पर गुरु नानक ने कहा कि मजदूरा बुलवा कर उसे निकलवा लो। परन्तु यह लहना जी से न सुना गया। वह तुरन्त नरदमें में कूद पड़े और उन्होंने प्याला निकाल लाकर गुरु जी के सामने रखा। गुरु नानक जी इनकी सहनशीलता तथा गुरु के प्रति दृढ़ भक्ति देख अत्यन्त ही प्रसन्न हुए।

लहना जी सदा गुरु की आज्ञा पालने में तत्पर रहते थे और उसे पाते ही समस्त कार्य उनके आज्ञानुकूल किया करते थे। चाहे कैसाही कठिन और कष्टदायक वह कार्य क्यों न हो, परन्तु वह कभी भी नहीं हिचकते थे, यहां तक की एक दिन नदी के तीर एक सड़ा हुआ मुर्दा पड़ा था, गुरु नानक जी ने लहना जी को मुर्दे को तार से बांध कर खींचलाकर खाने की आज्ञा दी। हमारे दृढ़ महात्मा जो कि अपने गुरु के वाक्य को अपने लिये सर्वस्व समझते थे, आज्ञा पाते ही उस मुर्दे को तीर ले आए और भोजन करने के लिये तैयार हो गए। इन सब कार्य्यों से गुरु जी के हृदय में यह बात स्पष्टरुप से प्रकट हो गई कि लहना ही एक ऐसा शिष्य है जो कठिन से कठिन अवसर पर भी अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रहेगा।

एक समय गुरु नानक जी जानकर पागल बने और समस्त शिष्यों को मारने पीटने लगे। गुरु की यह अवस्था देख सब शिष्यों ने अपने अपने घर को राह ली, पर हमारे दृढ़ गुरुभक्त लहना जो ऐसी शोचनीय दशा में गुरु को कब छोड़ने लगे थे वे तन, मन, धन से गुरु की सेवा और भी अधिक करने लगे और सब प्रकार के कष्ट सहन कर रोग के उपचार का यत्न करने लगे। इसपर गुरु नानक जी ऐसे लहना जी पर प्रसन्न हुए कि उन्हों ने उन्हींको अपना उत्तराधिकारी सर्व प्रकार से बनाना निश्चित कर लिया और विचारानुसार तत्क्षण लहना जी का नाम गुरु अङ्गद रख उन्हें गुरु की गद्दी पर बैठा दिया और उन्हें स्व-कर्तव्य साधन का उचित उपदेश दे आप निश्चिन्त हो ईश्वर के भजन में दिन बिताने लगे।

गद्दी पर बैठने के अनन्तर गुरु के आज्ञानुसार अङ्गद जी अपने निवासस्थान खिण्डौरा गांव को चले गए, तथा वहां जाकर एक कच्चे तालाब* के तीर आसन जमा परमात्मा के ध्यान में ऐसे निमग्न हुए कि भोजन तथा सब पदार्थ का भोग विलासादि त्याग कर केवल थोड़ा सा दूध पीकर जीवन निर्वाह करने लगे।

गुरु अङ्गद जी भी गुरु नानक के सदृश समस्त उत्तम गुणों से सुसम्पन्न थे, तथा अत्यन्त सत्य तथा पवित्र भावों से पूर्ण होकर समय व्यतीत करने लगे। थोड़े ही दिनों में अङ्गद जी का यश चारों ओर फैल गया और दूर दूर के लोग इनका दर्शन करने के लिये आने लगे। जो व्यक्ति इनके दर्शनों को आता वह इनके मधुर सम्भाषण तथा पवित्र उपदेशों को सुन कर मुग्ध सा हो जाता था।

गुरु अङ्गद जी गरीब, अमीर, अज्ञानी, ज्ञानी, सब प्रकार के मनुष्य से एक ही भाव तथा बड़े चाव से मिला करते, तथा अपने पवित्र उपदेशों से सबको प्रसन्न करते।

* यह तालाब अब पक्का बनकर "पतयावा साहिब" के नाम से विख्यात है॥

गुरु अङ्गद जी ने यावनी भाषा का अधिक प्रचार देख कर यह विचारा कि जहां तक हो सके इसके प्रचार में बाधा देकर स्वदेशी भाषा का प्रचार करना चाहिए। यद्यपि यह कार्य अत्यन्त कठिन तथा परिश्रम का था, पर हमारे कार्यकुशल कठिन परिश्रमी महात्मा इससे कब हटने वाले थे, उन्होंने एक नूतन अक्षरों का जिसे गुरमुखी कहते हैं प्रचार किया, केवल इतनाही नहीं वरन संवत् १६०१ में नानक जी की समस्त यात्राओं का वृत्तान्त भाई बाला से (जो प्रत्येक यात्रा में गुरु नानक के साथ था) सुन कर "जन्म-साखी" नामक एक पुस्तक रची जिसकी आजलों सिक्ख लोग अपनी धर्म्म पुस्तकों में गणना करते हैं।

गुरु अङ्गद जी के उपदेशों में एक अपूर्व्व शक्ति थी। वह अपने ललित उपदेशों से लोगों को मोह लेते थे और इनके धर्म्मोपदेश सुनकर लोगों के अन्धकाररूपी हृदय में ज्ञानरूपी दीपक का प्रकाश तुरन्त हो आता था। वे ईश्वर की महिमा सुनकर विस्मित और आनन्दित होते थे।

गुरु अङ्गद जी बड़े दानी थे। उनसे जो कोई व्यक्ति जिस वस्तु की इच्छा करता था वह अपने भरसक उद्योग करके उसे दिलाने की कोशिश किया करते थे। भिक्षुकों तथा अतिथियों को सदा भोजन मिलता था तथा जो कुछ चढ़त आती वह सब अपाहज और अनाथ पुरुषों तथा विधवाओं के भरण पोषण में लगा दी जाती थी। चढ़त की एक पाई भी वह अपने काम में नहीं लाते तथा अपने पुत्रों को सदा स्वपुरुषार्थ से द्रव्योपार्जन करने का अनुरोध देते रहे। और आप भी जौ को रोटी, जो उनकी माता सभराई मजदूरी करके लाती थी, खाते थे।

एक समय का वृत्तान्त है कि गुरु अङ्गद जी जिस गांव में रहते थे वहां बहुत समय तक वर्षा नहीं हुई। गांव के लोग अत्यन्त चिन्तित हुए और त्राहि त्राहि पुकारने लगे। उसी गांव में एक दुष्ट धूभण्ड सा रहता था। वह गुरु अङ्गद जी का चढ़ता प्रताप और यश देख कर ईर्षानल में दग्ध हुआ करता था। उसने लोगों को इकट्ठा करके कहा कि यदि तुमलोग गुरु अङ्गद जी को इस गांव से निकाल दो तो मैं पानी अभी बरसा दूं। गुरु अङ्गद जी ने जब यह बात सुनी तो वे बिना कुछ कहे सुने उस गांव को छोड़ चलते बने। यह बात उनके शिष्यों को बहुत बुरी लगी, परन्तु हमारे उदार-चेता महात्मा ने इसकी कुछ भी परवाह न की॥

इसी प्रकार सब लोगों को सन्तुष्ट रखते तथा गुरु नानक जी के सत्य सिद्धान्तों का भक्ति पूर्वक अनुमोदन करते हुए अङ्गद जी अपना समय बिताने लगे। ये बारह वर्ष छः महीने नौ दिन गुरु की गद्दी पर विराजमान रहे। इसके अनन्तर इन्होंने भी नानक जी की नाईं अपने पुत्र को गद्दी न देकर अमरदास जी को जो बड़े सच्चे गुरुभक्त थे, परीक्षा के अनन्तर गद्दी दी।

संवत् १६०२ चैत्र सुदी चतुर्थी बुधवार के दिन पहर दिन रहते सैंतालीस वर्ष ग्यारह महीने पन्द्रह दिन की आयु भोग कर गुरु अङ्गद जी ने परलोक की यात्रा की। इनकी समाधि खण्डौरा गांव के बाहर बनी हुई अभी तक वर्त्तमान है, जिसको गुरु अङ्गद जी ने अपनी जीवन अवस्था में ही बनवा रक्खा था। इस स्थान पर प्रति वर्ष सावन में एक मेला लगता है, तथा सरकार हिन्द की ओर से सदावर्त के लिये १४५८) रुपया वार्षिक की जागीर माफी मिली हुई है।

ले०—बेणीप्रसाद।

---

# मदन दहन

तारक सों अति पीड़ि सुरन जुरि बिचारी।
जाय पितामह पास कही बिपदा ɪ भारी॥

---

* यह पद्य कविकुलचूड़ामणि श्री कालिदास जी कृत कुमारसम्भवान्तर्गत मदनदहन का स्वच्छन्द अनुवाद है। कालिदास की कविता का अनुबाद होने के कारण इसमें अल्प शब्दों में विशेष अर्थ आ गया है, इससे यदि हमारे सहृदय पाठक इस-

सुरगुरु मुख सुनि दशा तीन बेधा दुख आनी।
निज बरदानिक असुर हनन अनुचित अनुमानी ॥
भे कहत 'शैलजा शम्भु सुत प्रकटि होय सेनाधिपति
तौ लहै। बिजयत्रिभुवन दुखदसुरघालकग्रसुरेसहति'
भवहि डिगावन योग शक्र कामहि अनुमानी।
सुमिरयो कारज हेत ताहि तुरता अति आनी ॥
तियभ्रू की धनुकोटि* लता सम सोहति जाकी।
सोइ रति-कंकन-खचित-कंठ धनुही धरि बाँकी ॥
है जासु सुरभि-कर पै लसत अम्ब-बौर-आयुध परम।
सोइ करन जोरि सुरनाथ पै गयो मार बूझन मरम† ॥२॥

सहसनैन की दीठि सकल सुर यूथ बिहाई।
सहसहु नैनन परी मीनकेतुहि दिसि धाई ॥
स्वामि समादर करत सेवकन कर तब नीको।
परत काज कछु आनि जबै दुखदायक जी को ॥
तब सिंहासन ढिग जाय युतमान बरासन पाय कै।
भो कहत मार पुरहूत सों लहि इकंत हरषाय कै ॥३॥ (१ और २)

सकल जनन के मनबिकार सब जाननहारे।
हे सुरनायक ! कुलिशपानि सिर छत्र सँवारे ॥
आयसु दीजै नाथ जैान चाहत जग कीन्हो।
करि सुमिरन अनुचरहि यथा आदर अति दीन्हो ॥
यह भई अनुग्रह रावरो जैान प्रकट यहि काल मैं।
तेहि चहत बिवर्धित होन, तब लहि निदेस सुरपाल ! मैं ॥४॥ (३)

कौन साहसी पुरुष आजु तप तेज सम्हार्यो ?
तीनि लोक के राज लोभ ईर्षा तब धार्यो ॥
कियो जैान महिदेव दनुज सुरगन मद चूरन।
सुनत जासु टंकोर प्रकम्पित सिद्ध ऋषय गन।
जड़ चेतन थावर जंगमहु निमिष माहिँ जो बस करै।
सोइ सर-संयुत-कोदंड मम तासु गरब छिन मैं हरै ॥५॥ (४)

तब सम्मत बिनु कौन डरपि जग के जंजालन।
चाहत तिनसों छुटन; चतुरता के बर ख्यालन ?
आरे चित भ्रकुटीन युवतिगन के फँसवाई ॥
राखहुँ ता कहँ बाँधि कटाच्छन के बस लाई ॥
केहि नय शुक्रहु-सीच्छित रिपुहि अरथ धरम सों करि बिमुख।
सरि कुल ढहावति, हरहुँ तिमि, राग दूत बल तासु सुख ? ॥६॥ (५ और ६)

पातिब्रत से कठिन धरम की साधनहारी।
सहज सुघरता सों चित चंचल बांधनहारी ॥
लखि गुलाब कलि काहु जासु कुच की छबि फारी।
हारि मानि मन, फारि फारि दृग रही निहारी ॥
केहि प्रमदागन-भूषन तियहि लाज दाम सों मुकुत करि
मद मत्त, अरुन चख, सिथिल तन, चहत करन प्रभु भुजनि भरि ? ॥७॥(७)

गरबवती केहि सती तिरसकार्यो प्रभु तोहीं ?
सुरति-दान अभिलाष जानि करि दृग सतरोहीं ॥
सापराध, लखि नमित तोहिँ, बिनती सुनि तोरी,
कियो महत अपमान कौन तरुनी मति भोरी ?
तेहि पछितावहि के पातकी कोमल सेज बिछायकै।
छिन माहिँ नाथ सम्मुख करहुँ कुसुम बान धनु लाय कै ॥८॥(८)

धरहु धीर, तब कुलिस, नाथ ! त्रिपुरारि ! त्रिशूला,
काल दंड, हरि चक्र करैं जेहि रिपुहि न सूला।
ताहि कुसुम सर, कोपवती अबलन बल जीतैं ॥
तेहि रुद्रहु इक मधु सहाय धीरज सों रीतैं ॥
सुर असुर चराचर थरहरैं लखि पिनाक जाके करन।
को त्रिभुवन धनुधर आन, मम जो न होय संकित सरन ? ॥९॥(९ व १०)

के प्रत्येक शब्द पर ध्यान दें और अनुवाद को मूल से मिलावें तो हमारा श्रम पूर्णरूप से सफल हो। विशेष सुबीते के लिये प्रत्येक छन्द की गणना के बाद हमने ब्रैकेट ( ) में उन श्लोकों का नम्बर भी दे दिया है जिनका अनुवाद उनमें हुआ है। जिन छन्दों के आगे ब्रैकेट में कुछ न दिया हो, वहाँ समझना चाहिए कि उतना अंश हमने मूल के बाहर अपनी ओर से बढ़ा दिया है। कुछ छन्दों में कुछ अंश मूल का है और शेष अपनी ओर से हमने बढ़ाया है।

* धनुष का दंड।

† यह प्रथम दो छन्द दूसरे सर्ग से अनुवादित हुए हैं।

पाद-पीठ-चल जंघ पर लखि प्रतिबिम्बित तत्र।
ध्यान मगन-पुरहूत तब धरगोचरण अन्यत्र ॥१०॥(११)
निज मन बांछित काज पर कामहि तत्पर जानि।
शक्रि प्रकट तेहि करत लखि कह्यो शक्र सन-मानि ॥११॥ (११)
मीत सकौ करि जो तुम भाषत या महँ नेक नहीं सक भोरे ॥
बज्रहु काम प्रसिद्ध पुरातन हैं जुग अस्त्र सदा ढिग मोरे ॥
कुंठित है मम बज्र सही तप तेज भरे विजयीन के धोरे ॥
पै सब ठौर विजै-कर तू थहरायन को सर जोरत तोरे ? ॥१२॥ (१२)
जानहुँ तो बल भाँति भली तुहि आपु समान बली निरधारी।
चाहत सौंपन मीत तुम्हैं हित देवन के निज कारज भारी।
श्री हरि औ महि धारन से गुरु काज सरैं अहिराजहि पाहीं।
त्यों यह काज बड़ो, जग मैं तजि तोहिं सकै करि दूसर नाहीं ॥१३॥ (१३)
रुद्रहि धीरजहीन बनावन जैान कियो तुम है पन गाढ़ो।
अंतरजामि भए, अरि-पीड़ित ते वन संकट सों तिमि काढ़ो।
सेनप ते रिपु जीतन हेतु चहैं शिव-शुक्र-समुद्भव जोई ॥
धारि समाधि रहे शिव, ताहिं छुड़ाय सकै नहिं तो बिन कोई ॥१४॥ (१४ और १५)
जाय उपाय रचौ जित-इन्द्रिय-शंकर छोड़ि समाधिहि जाते।
चारु सतोगुन रूप भरी रुचि कै मन प्रेम करैं गिरिजाते।
जो अबलागन को सिरताज, करै हिमि भूधर पूरित भाते।
ताहि विरंचि कह्यो शिव शुक्रहिं धारन जोग भली बसुधाते ॥१५॥ (१६)
"शैल सुता, पितु आयसु लै, नग पै तपसी-त्रिपुरारि अराधैं"।
नाक-नटीन कह्यो यह मो सन जे छिपि दूतपनो मम साधैं।
कारज देवन को सिधि, त्यों गिरिजा शिव व्याह, न तो बिन होई।
खेतन बीज कितेक, बिना जल अंकुर धारि सकैं किमि कोई ? ॥१६॥ (१७-१८)
देवन के जय साधन मूल सदा शिव तेज अपार पसारे।
तो सर को गति है तिन मैं, तेहि ते तुम धन्य मनोज-सुखारे।
कारज जो न प्रसिद्धि महीतल, औ बहु लोग सकैं करि जाहीं।
तोहु कारन है जस को; यह तो अति दुस्तर है जग माहीं ॥१७॥ (१९)
तीनहु लोकन को हित-कारज त्यों सुर जूथन जाचक पायो।
हे जग जाहिर सूर सिरोमनि! घातक काज न तोहि बतायो ॥
है ऋतुराज सहायक तो, बिन जाचेहु काज करै मन भायो।
पावक पैान प्रचंड करै जिमि, को तेहि को फरमान सुनायो ? ॥१८॥ (२० और २१)
स्वामी के ए बचन सुनि, "भलेहि नाथ" कहि मार।
चल्यो, प्रसादित-माल-सम आयसु धारि लिलार ॥१९॥ (२२)
ऐरावत-उतसाह-हित-ताड़न सों दृढ़ जैान।
ता कर सों परस्यो बपुष तासु मुदित सुर रैान ॥२०॥ (२२)

ले. श्यामविहारी मिश्र, एम. ए. (शिरमौर),
और
शुकदेवविहारी मिश्र बी. ए. (शशिभाल)

---

# नसीरुद्दीन हैदर

## भूमिका

मौलवी अहमद अली साहेब लिखते हैं कि "लखनऊ में मुसलमानों की बादशाहत माना एक स्वप्न थी, जिसे पूरी तरह देखने भी न पाए और आंख खुल गई और फल (ताबीर) पूछते पूछते भूल भी गए"। बात तो वास्तव में ठीक है, पर हम इसके साथ इतना और बढ़ा देते हैं कि हज़रत यह सब पापड़ आपही के बेले हैं। जो अवध जैसे देश पर शासन करे, जिसके हाथ में ५० लाख प्रजा के भाग्य का वारा न्यारा हो, उसके गृहचरित्र इस प्रकार निन्दनीय हों! ईश्वर की महिमा है कि ऐसों की भी उन्नति हो! मैं कुछ विशेष न कह कर इतना ही कहना और आवश्यक समझता हूं कि हमारे सुहृदय पाठकवृन्द इसे "वीरेन्द्रवीर", "प्रतापसिंह" वा "गङ्गा गोबिन्द-सिंह" इत्यादि की वज़न पर "नसीरुद्दीन हैदर" नामक कोई नवीन उपन्यास न समझलें। यह एक रोज़नामचे (डायरी) के आशय पर लिखा गया है और इसके लेखक भी वही हैं जिन्होंने रोजनामचा लिखा है। इसमें वास्तविक घटना के अतिरिक्त काल्पनिक रचना का छुआ छूत नहीं है। इसके लेखक एक अंगरेज़ महाशय हैं जो कि नसीरुद्दीन हैदर शाह अवध के मुसाहिब थे। साढ़े तीन वर्ष तक यह दरबार शाही में मुलाज़िम रहे। इसी साढ़े तीन वर्ष के ज़माने में इन्होंने दरबार में जो जो बातें देखी हैं उसे कहते हैं कि "मैं सचाई से अपनी डायरी में टाकता जाता था"। विलायत जाने पर इन्होंने इसे एकत्र करके प्रकाशित करा दिया। इसका प्रथम संस्करण सन् १८५५ में प्रकाशित हुआ। पुस्तक भर में कहीं इन्होंने अपना नाम धाम नहीं दिया है और न दरबार के दूसरे अंगरेज मुलाज़िमों का ही कुछ ज़िक्र किया है। इससे इनका नाम लिखने में मैं भी विवश हूं।

अनुवादक।

## पहिला अध्याय।

बीस वर्ष से कुछ अधिक हुआ होगा कि निज के कुछ काम के लिये मैं पहिले पहल लखनऊ में आया। उस समय गाज़ीउद्दीन हैदर का पुत्र नसीरुद्दीन हैदर अवध की गद्दी पर बिराजमान था। जब मैं कलकत्ते में था तो मैं लखनऊ के अनोखे चाल चलन और बादशाह के दरबार के निराले ढंग की अनेक विचित्र कथाएं सुन चुका था—कि बादशाह ने एक बहुत बड़ा menagerie कायम कर रखा है और जो योरपनिवासी कम्पनी (ईस्ट इण्डिया कम्पनी से तात्पर्य्य है) के नौकर नहीं हैं उनका वह बड़ा आदर करता है और अवध के रहनेवाले वीररस के पक्के सराहनेवाले रसिक होते हैं और लखनऊ की गली कूचों में भयानक शक्ल के मुसटण्डे ढाल, तलवार बरछा और बन्दूक लिये इधर उधर फिरा करते हैं, इत्यादि कितनी बातें मैंने सुनली थीं; किन्तु इसके पहिले जब जब सुनी बातों का निज नेत्रों से देखने का मुझे अवसर मिला है तो मैं एक प्रकार से निराश होता आया हूं। परन्तु इस बेर ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि यहां आने पर जो कुछ मैंने निज नेत्रों से देखा उसका मुझे स्वप्न में भी ख्याल न था। पहिले तो मैं बादशाह का राजभवन ही देखकर भौचक्क सा रह गया, क्योंकि यह अनेक महलों का एक ऐसा सिलसिला था जो गोमती के किनारे किनारे बहुत दूर मीलों तक लम्बा चला गया है। महलों के इस सिलसिले को देखकर मुझे कुसतुनतुनिया के रनिवास वा पेकिन के शाही महलों का ध्यान आया, क्योंकि ये सब भी हूबहू इसी नक्शे के थे। पूर्वदेश के रजवाड़ों में राजमहल केवल राजों के रहने का स्थान ही नहीं होता, वरन् राज्यसम्बन्धी हर एक बातों में वह राज्य का केन्द्रस्थल समझा जाता है। वह माना एक छोटा सा शहर है और उसीमें महलों का सिलसिला होता है जिसमें रनिवास और किंकरों के रहने की जगह होती है। राज़

दरबार, फुलबारी, तालाब और झरनों के सिवाय बड़े बड़े कर्मचारियों के निवासस्थान भी इसीमें बने रहते हैं। लखनऊ के महल की भी वजिन्स-हू यही हालत थी कि गोमती (इसका पाट बहुत ही कम है) के एक किनारे किनारे तो शाही महलों का सिलसिला था और दूसरे किनारे पर एक बड़ा रमना था, जिसमें बादशाह के पलुए जीव जन्तुओं का संग्रहस्थान बना था। इस स्थान में इतने भिन्न प्रकार के जन्तु इकट्ठे किए गए थे कि उनसे अधिक का मेरे लिऐ अनुमान करना भी असम्भव है। सैकड़ों हाथी, बाघ, गेंडे, हिरन, चीते, तेन्दुए, फारस की बिल्लियां, चीन के कुत्ते, इत्यादि कुछ खुले कुछ कटघरों में बन्द इस रमने में इस तरह घूम रहे थे, या धूप सेकते या पड़े लेट लगाते देख पड़ते थे, जैसे इंगलिस्तान में किसी गोचर में गौ वा भेड़ देख पड़ते हों। बादशाह के "फ़रहबख़श" नामक महल का बाहरी रूप रंग कुछ विशेष सुन्दर न था, परन्तु उसके पसार को देख कर मैं एक प्रकार हैरान हो गया।

लखनऊ की गलियों को भी देख कर मैं कुछ कम प्रसन्न न हुआ। महल के गिर्द की गलियों को बिशप हीबर साहब ने ड्रेसडेन की गलियों से उपमा दी है। और बाज़े इससे मास्को की गलियों की तुलना देते हैं। यद्यपि मैंने इनमें से कोई भी नगर नहीं देखा है, परन्तु मेरा ख्याल है कि ये दोनों मिसालें ठीक नहीं उतर सकतीं। एक बड़ा शहर जिसे मैंने देखा है और जो लखनऊ के तले भाग की तङ्ग गलियों, लदे ऊटों और इसके बाजारों से बहुत मिलता जुलता है, वह कायरो (Cairo) है जो मिश्र देश की राजधानी है। मासको, ड्रेसडेन और कायरो जिससे आप चाहिए लखनऊ की उपमा दीजिए, परन्तु मेरी समझ में लखनऊ का अनोखापन कहीं भी नहीं पाया जा सकता। पहिले तो लखनऊ के ऐसे हथियारबन्द मनुष्य इन दोनों नगरों में कहीं भी देख नहीं पड़ेंगे। मासको निवासी चाहे छूरी बांधते हों और कायरो के लोग भी हाथ में कुछ हथियार रखते हों, परन्तु लखनऊवाले सदा अस्त्र शस्त्र से लैस सिपाही बने देख पड़ते हैं। ढाल, तलवार, बन्दूक वा पिस्तौल तो इनके पास अवश्य मौजूद रहती है, यहां तक कि जिनका पेशा रोज खोदना और रोज खाना है, वे भी कम से कम एक तलवार तो जरूर पास रखते हैं। हज़रत के तन पर चाहे मैला कुचैला वस्त्र क्यों न हो, पर मटरगस्त को चलेंगे तो तमञ्चा और ढाल अवश्य चाहिए। ढाल भैंसे की खाल से मढ़ी हुई जिसमें पीतल के गुलमेखें जड़े रहते हैं, बांये ओर कन्धे से लटकती रहती है। बड़ी बड़ी मूछोंवाले भयानक शकल के राजपूत और काली डाढ़ीवाले मुसलमानों के बदन पर ढाल और तलवार बड़ी शोभा देती है। फिर जब यह गली कूचों में ऐंठासिंह बने गटरगश्ती को निकलते हैं तो वास्तव में देखते जी नहीं भरता और इनके निराले और बहादुराना ढंग का भली भांति परिचय होता है। लखनऊवालों का यह सिपाहियाना ढंग देखकर कुछ आश्चर्य न करना चाहिये, इसलिये कि कम्पनी की सेना में प्रायः अवध के ही लोग अधिक भरती हैं और बङ्गाल प्रान्त की सेना तो केवल अवधियों ही से भरी हुई है। लखनऊवालों में हथियारबन्दी का शौक बचपन ही से पैदा हो जाता है। भाला और बान तो बच्चों का नित्य का खिलौना है। जैसे इङ्गलिस्तान में दाईयां बच्चों के हाथ में झुनझुने पकड़ा देती हैं, वैसे ही छोटे छोटे काठ के तमञ्चे और तलवार यहां के बच्चों को खेलने के लिये दिए जाते हैं। इन्हीं कारणों से यहां के गली कूचों का रंग ढंग मुझे अनोखा दीख पड़ा। मालूम होता है कि मैं किसी ऐसे स्थान में पहुंच गया हूं जहां का वर्णन मैं बचपन में किस्से और कहानियों के ग्रन्थों में पढ़ चुका हूं, अर्थात् जहांके सब रहनेवाले पहलवान और बीर होते हैं और जिनके बाहरी रंग ढंग और पहिरावे से उनके आन्तरिक पराक्रम और शूरता का परिचय मिलता है। मासको या

कायरो में तुमने हाथी को लादी लादते कभी नहीं देखा होगा, फिर ऐसे भारी भरकम जानवर का ऐसी तङ्ग गलियों में बोझ लाद के चलना फिरना भी कैसा कुछ बेहङ्गम और बेजोड़ दीख पड़ता है। जैसे कायरो में बोझ से लदा हुआ ऊंट अपने जञ्जाल से गली में रास्ता रोक लेता है, वैसेही ये हाथी लखनऊ की गलियों में थोड़ी देर के लिये राह बन्द कर देते हैं। इन गलियों में हाथी और ऊंट दोनो आम तौर पर देख पड़ते हैं। शहर के मैले भाग में जहां बाजार लगता है, वहां घोड़ा बिरले दिखाई पड़ता है। परन्तु हाथी और ऊंट आम तौर पर लादी लादे देख पड़ते हैं। एक मुद्दत तक मेरी यह बान थी कि इन तङ्ग गली कूचों में जब इन मोटे ताजे जानवरों को देखता तो वेतहाशा खिल्ले मारने को जी चाहता और खड़े देखते रहने की इच्छा होती, यद्यपि जानता था कि यहां देर तक खड़ा रहना मानों अपनेको जान जोखिम में डालना है।

यहां की हिन्दू मुसलमान प्रजा के रहन सहन में बड़ा भेद था। यदि समता थी तो केवल यह कि दोनों एक ही जैसे हथियार बांधते हैं। लखनऊ की बस्ती तीन लाख है, जिसमें दो भाग हिन्दू हैं। पर इनमें नीच श्रेणीवाले अधिक हैं। बाकी एक भाग मुसलमानों की बस्ती है, और यही लोग धनिक और प्रधान हैं क्योंकि राज मुसलानों के ही हाथ में है। मेरे पाठकों में बहुतेरे ऐसे होंगे जो कि देश के इस प्रान्त के (जिसकी राजधानी लखनऊ है) विषय में कुछ भी नहीं जानते होंगे। इसलिये यहां पर कुछ संक्षेप में वर्णन करना मैं उचित समझता हूं।

लन्दन में एक प्रकार की चटनी "शाह अवध की चटनी" के नाम से प्रसिद्ध है और "अवध का बादशाह बड़ा अहङ्कारी है" यह कहावत भी लन्दन के व्यापारियों की मण्डली में खूब प्रसिद्ध है, जिसे प्रायः सब जानते हैं। गत शताब्दी के अन्तिम भाग में जब लार्ड वेलेज़ली गवर्नरजनरल होकर भारतवर्ष आए तो उस समय अवध विस्तार में इङ्गलिस्तान से बड़ा था और मुगल राज्य का एक सूबा गिना जाता था और यहां के हाकिम नवाब वज़ीर कहे जाते थे। जबसे वारेन हेसटिङ्ग ने नवाब वज़ीर के वंश की दो बेगमों को लूट कर उनके "रफ़ीक" ख्वाजासरा से बहुत सा धन बलात् छीन लिया, तभी से इन नवाब वज़ीर से इङ्गलिस्तान के अधिकांश लोग परिचित होगए है। क्योंकि सर एडमण्ड बर्क ने अपनी अद्वितीय जगत्प्रसिद्ध वक्तृता में हेसटिङ्गस् की प्रतिष्ठा और मान को भलीभांति चिथाड़ के रख दिया है और तभी से अवध के नवाब वज़ीर योरप में एक "सितम रसीदा" ख्याल किए जाते हैं। पर वास्तव में ये नवाब साहेब अपने पूर्वाधिकारी की विधवा बहू बेगम के अपमान और अनादर पर इसलिये बड़े प्रसन्न हुए कि वह उनकी सगी मा न थी और वे उनके मुतवन्ना (पुष्यपुत्र) थे। मैं कह चुका हूं कि जब वेलेज़ली भारत में आए तो उस समय अवध इङ्गलिस्तान से बड़ा था और शुरू से अंगरेज़ों का मित्र समझा जाता था। लार्ड वेलज़ली ने भारत में पहुंच कर अवध की मित्रता को जाँच की और उसका आधा राज्य बंगाल सूबे में सम्मिलित कर लिया, क्योंकि उनके ख्याल में मित्रता को जाँच इससे बढ़कर दूसरे तौर पर नहीं हो सकती थी। उनका यह भी ख्याल था कि जिस देश के बादशाह ने उनके साथ सच्चा हित प्रगट किया है उनकी प्रजा को अपनी प्रजा बना लेना ही उसकी मित्रता का प्रतिफल देना है।

मारकुइस-आफ हेसटिङ्गस् ने गाज़ीउद्दीन से दो कड़ोड़ रुपया उधार लिया। इसके बदले में नवाब को तराई की ऊसर भूमि प्रदान की जो कि हिमालय के नीचे के हिस्से में स्थित है, और जिसे कम्पनी ने नैपाल से युद्ध में जीता था। इसीके साथ नवाब को बादशाह की उपाधि भी प्रदान की और वे "हिज़ हाइनेस नवाब अवध" अथवा "हिज़ मेजेस्टी शाह अवध" कहे जाने लगे। बिचारे

गाजीउद्दीन शान्त हो बैठे वा यों कहिए कि प्रत्यक्ष में बन गए * ।

सन् १८१९ ई० में कम्पनी ने गाजीउद्दीन को बादशाह का तिलक दिया; और १८२७ में उसका बेटा नसीरुद्दीन गद्दी पर बैठा । जब मैं लउनऊ में आया तो यह नसीर तीस वर्ष का पट्ठा था ।

इस गई बीती अवस्था में भी अवध का देश त्रिभुज आकार में नैपाल और गङ्गा के बीच में स्थित है । उत्तर में इसकी सरहद्द नैपाल में जा मिली है, और दक्षिण में गङ्गा नदी इसकी सिवान है । इसका पश्चिमोत्तर भाग दक्षिण पूर्व की ओर ढालुआं है । अवध भर में उन्नत भूमि केवल वही है जो मारकुइस आफ हेसटिङ्गस् ने नैपाल युद्ध के बाद नवाब को प्रदान की थी । परन्तु इस तराई के प्रान्त में आदमियों की बहुत कम बस्ती है । जानवर बहुत हैं और यदि धन है तो वह जङ्गल ही का ।

यद्यपि हर एक गवर्नर जनरेल ने एक दूसरे के बाद अवध को लूट मार से खोखला बना दिया था,–किसीने उसकी उपजाऊ भूमि में से ही कुछ काट छांट कर ली और किसीने धन की ही नोच खसोट की है,–परन्तु फिर भी अवध का बचा हुआ भाग जर्मनी के किसी भाग से (प्रशीया और आस्ट्रिया छोड़ कर) बस्ती में कम नहीं है । यदि विस्तार का बिचार किया जाय तो वह होलेण्ड, बेलजीयम, और डेन्मार्क तीनों के योग से बड़ा है, वा यों कहिए कि सुइजरलेण्ड, सैक्सनी और वेटमवर्ग यदि तीनों ही एक हो जावें तब भी अवध ही बीस रहेगा । यदि अवध योरप में होता तो हर एक सूबे से बढ़ा चढ़ा गिना जाता । गौरव में यह बैवेरिया अथवा नेपल्स की तुलना कर सकता है । परन्तु ऐशिया में इसकी गिनती भी नहीं है ।

मैं कह चुका हुं कि मैं किसी कार्य्यवश लखनऊ आया था । केवल देश की सैर करना मेरा अभिप्राय न था । इस समय आनरेबल कम्पनी उन लोगों को बड़ी तुच्छ दृष्टि से देखती थी जो बिना प्रयोजन देश की सैर किया करते थे । अवध के शाही दरबार में मेरे एक मित्र थे । मैंने इनके ही द्वारा दरबार तक पहुंचने की कोशिश की और भाग्यवश मुझे आज्ञा भी मिल गई । मैंने दरबार में जाने की इच्छा केवल इसी ख्याल से की थी कि देखूं हिन्दोस्तानी दरबारों का क्या रङ्ग रवैया होता है । इसके अलावे मेरा कोई और भाव न था । जब से दिल्ली के कारखाने छिन्न भिन्न हुए और उसकी पहली शान शौकत मिट्टी में मिली, तब से हिन्दुस्तान में कोई दूसरी सलतनत ऐसी नहीं रही जो लखनऊ से बराबरी का दम भर सके । अवध के दरबार में अपने हानि लाभ की रखवारी के लिये कम्पनी ने एक अङ्गरेज़ अफ़सर नियत कर छोड़ा था । मेरा परिचय इन अफसर साहेब ने दरबार से नहीं कराया, इस कारण बादशाह सलामत ने मेरा बड़ा आदर किया । मुझे टोह लगी कि दरबार के खानगी अङ्गरेज नौकरों में एक जगह खाली है । यदि मैंने उचित भेट दी और वह भेंट स्वीकार कर ली गई तो मैं उस पद पर नियत हो सकता हूं* । परन्तु तब तक कोई युरोपियन अवध के बादशाही में नौकर नहीं हो सकता था जब तक कि रेज़ीडेंट साहेब की मंजूरी न होवे, यों कहिए कि जब तक रेज़िडेंट साहेब की आज्ञा पहिले से हासिल न कर लेवे । इसलिये मेरे लिये भी जरूरी हुआ कि मैं भी उनकी आज्ञा

* मैंने यह बात जो लिखी है वह बिलकुल ऐतिहासिक है । कलकत्ता रेव्यू (Vol 3. p. 376) में एक लेखक लिखता है कि 'मुझे विश्वास है कि वारेन हेसटिङ्गस्, लार्ड वेलजली, लार्ड टेनमथ, लार्ड हेसटिङ्गस्, लार्ड ओकलेण्ड अपने निज व्यावहार में कभी विचारे अवध के साथ यह वर्ताव नहीं करते जो उन्होंने गवर्नर-जेनरल होकर किया है ॥

*अभी साहेब बहादुर ऊपर कह आए हैं कि मेरी तबियत देशी दरबार का रङ्ग रवैया देखने की थी, पर अब मालूम हुआ कि आप की मनसा (इच्छा) कुछ और रही थी । यह सब ढकोसला था ।

पहिले ले लूं। मैं अब "बड़े साहेब" के सामने पेश किया गया जो लन्दन में एक साधारण जीव समझे जाते हैं। उनके अधिकार यहां इस देश में एक बादशाह और उसकी पचास लाख प्रजा पर ऐसे अपार थे कि वे अधिकार योरप में किसी बादशाह को भी हासिल न होंगे। सारांश यह कि "बड़े साहेब" से मेरा परिचय कराया गया। मेरे उनके बीच कुछ चिठ्ठी पत्री हुई और अन्त में इस शर्त पर उनकी मंजूरी मिल गई कि मैं अवध के किसी राजनैतिक मामले में किसी प्रकार दखल न दूंगा और न किसी ऐसी साज़िश में सम्मिलित होऊंगा जो दरबार में सम्मान और अधिकार पाने के लिये बज़ीरों के बीच हुआ करती है वा दो जमीन्दारों के बीच आपस की लड़ाई में मैं किसी का पक्ष न लूंगा। इन प्रतिज्ञाओं पर बादशाह की दास्यशृङ्खला में भरती होने की मुझे आज्ञा मिली और अब बादशाह की सेवा में हाजिर होना मेरे लिये ज़रूरी हुआ। पूर्व के देशों में यह चलन है कि बादशाह के सामने कोई पुरुष खाली हाथ नहीं जाता। ऐसी हालत में कुछ भेट करनी उसके लिये बहुत जरूरी है। दरबार के नियमानुसार मामूली दरबारों में भी बादशाह को कुछ भेट दिखानी पड़ती है, यद्यपि इसके बाद ही बादशाह की ओर से किसी दूसरे रूप में उसे अधिक मूल्य का इनाम अथवा खिलत मिलती है। पहिले मर्तबा मैंने बादशाह को भरे दरबार में एक सिंहासन पर बैठे देखा था। मैंने विचारा था कि वह गद्दी पर पलथी मारे बैठे होंगे। परन्तु वह भारी काम का वस्त्र पहिने सिर पर जड़ाऊ मुकुट (जिसपर हुमा के पर की कलगी लगी थी) धारण किए हुए एक सुन्दर सुनहरी जगमगाती कुर्सी पर बिराज रहे थे। मेरी आशा के विरुद्ध उनके पहिनावे और दरबार की सजावट से बहुत कुछ युरोपियन भाव की झलक आ रही थी। उस वेर जल्दी के कारण मैं किसी चीज़ को जी भर के नहीं देख सका था, यहां तक कि बादशाह का चेहरा भी भली भांति न देखने पाया था; परन्तु इस वेर जब मैं एकान्त में हाज़िर हुआ तो उस समय हजूर अपने कुछ युरोपियन खानगी नौकरों के साथ महल की फुलवारी में चहल कदमी कर रहे थे। मैं एक रविश के किनारे खड़ा हो बादशाह की बाट जोहने लगा। मेरे हाथ में एक रेशमी रुमाल था, जिसपर भेट के लिये मैंने पांच अशरफियां रख छोड़ी थीं, और इस रूमाल और इन अशरफियों को बांए हाथ से संभाले था। इस स्थिति में मैं बादशाह की राह देख रहा था। दरबार के नियमों के सीखने का मेरे लिये यह पहिला अवसर था। जब मैं अपने खड़े होने के इस ढंग को देखता तो आप अपने को मूर्ख बिचारने लगता था। मेरी टोपी अलग एक कुर्सी पर पड़ी थी और मैं नंगे सिर खड़ा था। जब तक बादशाह सलामत आवें आवें, तब तक धूप की गर्मी के मारे पसीने से मैं नहा गया। बारे, अब बादशाह अपने मित्रों सहित आन पहुंचे। इस समय वह एक अंगरेज़ी जेन्टलमैन की नाई सादा काला सूट पहिने हुए थे। सिर पर लन्दन की बनी एक टोपी थी। उनका चेहरा जो हलके सीप के रंग का था, इस समय विह्वल और सन्तुष्ट दीख पड़ता था। हलके सीप के रंग पर काली काली मोंछें और सिर के बाल अति शोभा दे रहे थे। नेत्र छोटे पर काले और चमकीले थे। छरहरा बदन और मियाना कद था। जब वह मेरे पास पहुंचे तो साथियों से अंगरेज़ी में बात चीत करते आते थे। मुझे याद नहीं कि वे सब आपस में उस समय क्या बातें करते थे। मैंने उनकी सब बातें सुनीं पर स्मरण नहीं है। कारण यह है कि मैं उस समय अपनी ही धुन में इतना मग्न था कि उधर ध्यान न दे सका।

बादशाह अब पास पहुंच गए। मुझे देख के मुसकराए और अपने बांए हाथ को मेरे हाथों के नीचे रख के दाहिने हाथ की उङ्गलियों से मेरी भेट को छू के कहने लगे—"हां—तो तुमने मेरे यहां नौकरी करना स्वीकार कर लिया—क्यों?"

"जी हज़ूर !" मेरा उत्तर था।

"तो हममें खूब बनेगी, क्योंकि हम अंगरेज़ों को दिल से चाहते हैं"।

यह कह कर बादशाह ने पहिली बात चीत छेड़ दी ग्रैार मैं चुपके से सेवकदल में हो लिया।

मेरे एक मित्र ने चेतावनी दी कि भेट की अशरफियां जेब में रखलो, नहीं तो कोई हिन्दुस्तानी (नैाकर) छीन लेवेगा। मैंने तत्काल मोहरें जेब में धर लीं ग्रैार अपनी टोपी उठा शाही दल के साथ महल की ग्रोर चला। इस महल के कमरे बहुत बड़े थे ग्रैार बड़े बड़े झाड़ फानूस लगे थे ग्रैार जगमगाते चैाखटों में उमदः उमदः तस्वीरें लटक रही थीं। हर एक कमरे में इतनी चीज़ें भर दी गई थीं ग्रैार ऐसी ऐसी विलक्षण चीज़ें थीं कि आदमी उन्हें देख के प्रसन्न होने के बदले भैाचक सा रह जाता था। जगमगाते झाड़ फानूस, चन्दन ग्रैार हाथी दांत की ग्रलमारियां, बहुमूल्य वस्त्र ग्रैार कवच, हीरे ग्रैार जवाहिरात जड़े हुए हथियार ग्रैार ढालें, चारों ग्रोर बड़ी खूबसूरती से सजे हुए थे। जिधर नज़र जाती उधर ही इन चीज़ों की भरमार थी। परन्तु बादशाह के भोजन का गृह, जिसमें वे बैठ के अपने चुने हुए मित्रों के साथ भोजन ग्रैार पान किया करते थे, निहायत साफ ग्रैार सुथरा था ग्रैार बड़ी ही सादी चाल पर सजा हुग्रा था। सजावट ग्रैार सादगी में यह कमरा ठीक अंगरेज़ी भोजनगृहों से बहुत कुछ मिलता था।

महीने में एक बेर बादशाह अपने अंगरेज़ी मुलाज़िमों को एक ग्राम भोज देते थे, जिसमें सेना के अंगरेज़ी अफ़सर छावनी से ग्रा कर शरीक होते थे। कभी कभी इस भोज में रेज़ीडेंट साहेब भी अपने मित्रवर्ग सहित बुलाए जाते थे। परन्तु ऐसी ज्योनार बादशाह के जी को जंजाल होजाती थी। क्योंकि इसके अन्त में मैंने बादशाह को प्रायः यह कहते सुना है कि "शुक्र है कि यह काम भी कुशल पूर्वक समाप्त हुग्रा ग्रैार ये सब अपने अपने घर गए। अब ग्राग्रो ग्राराम से एक जाम शराब पीएं। बापरे बाप! यह सब भी कैसी झंझट है!" इसके साथ ही बादशाह अंगड़ाई लेते ग्रैार लेट जाते ग्रैार अपनी बहुमूल्य टोपी उतार कर कमरे के किसी ग्रोर फैंक देते थे।

पहिले पहिल जिस रोज़ मेरा महल में प्रवेश हुग्रा, उसी दिन बादशाह ने एक प्राइवेट ज्योनार दी थी, जिसमें नियमानुसार पांच अंगरेज़ मुलाज़िम शरीक थे। इनमें बादशाह के एक अंगरेज़ मास्टर भी थे जो उन्हें अंगरेज़ी की शिक्षा दिया करते थे। बादशाह ने कई बेर प्रति दिन एक घंटा अंगरेज़ी पढ़ने की प्रतिज्ञा की, क्योंकि तेज़ी से अंगरेज़ी बोलने का उन्हें बहुत ही बड़ा शैाक था। परन्तु अंगरेजी बोलती बेर समय समय पर उन्हें प्रायः उर्दू के शब्द इस्तैमाल करके काम चलाना पड़ता था। मैंने कई बेर देखा है कि बादशाह अपने अंगरेज़ शिक्षक के सामने बैठे हैं ग्रैार सामने टेबिल पर पुस्तकें चुनी हुई हैं। बादशाह को मैंने प्रायः कहते सुना कि "हां मास्टर साहेब! अब हमको पढ़ना चाहिए"। बादशाह अपने शिक्षक को सदा मास्टर साहेब ही कहा करते थे। पहिले मास्टर साहेब Spectator स्पेक्टेटर (प्रसिद्ध गद्य ग्रन्थ ऐडिसन कृत) वा किसी नावेल का कुछ अंश पढ़ते थे। उसके बाद बादशाह को वही अंश स्वयं ही पढ़ना पड़ता था। मास्टर साहेब उसीको दुहराने लगते ग्रैार बादशाह सलामत फरमाते कि "बाप रे बाप* ! क्या खुश्क ग्रैार बेनिमक मज़मून है"। फिर जब बादशाह की पढ़ने की पारी ग्राती तो वह मास्टर साहेब से कहते "ग्राग्रो एक बेर शराब उड़ जावे"। शराब पीने के साथ ही बादशाह बातों में लग जाते। पुस्तकें फेंक दी जातीं ग्रैार शिक्षा का यहीं से अन्त हो जाता। इस शिक्षणपद्धति में कभी दस मिनिट से अधिक नहीं

* "बाप रे बाप" सुनने में बहुत बुरा लगता है। परन्तु ये शब्द खुद बादशाह सलामत के हैं। अंगरेज़ी ग्रन्थकार ने Boppery Bop करके इसे अंगरेज़ी बना दिया है।

लगता था। परन्तु इसीके लिये मास्टर साहेब को १५ सौ पाउन्ड (१५ हज़ार रुपया) वार्षिक वेतन मिलता था। यह मास्टर साहब बादशाह के मुसाहिबों में से थे। पुस्तकालय के अध्यक्ष एक जर्मन चित्रकार और गायक और उनके बाडीगार्ड के कमान थे। ये सब भी उनके मुसाहिब थे। परन्तु इन सब में उनका एक मुहलगा हजाम मुसाहिब अङ्गरेज था जिसको बादशाह सलामत ने बहुत ही सिर चढ़ा रक्खा था। मैं भी उनके मुसाहिबों में से एक था, परन्तु इन सब मुसाहिबों में से हजामदास की बड़ी बात थी। बादशाह के मिजाज़ में जितनी पहुंच इस शख्स को थी उतनी वज़ीर आज़म को भी न थी। बादशाह का ऐसा स्नेहपात्र होने से दरबार के बड़े बड़े अमीर भी उसकी दरबारदारी किया करते थे। यदि सचाई से उसका यहां की जीवनवृत्तान्त लिखा जावे तो बड़ाही रोचक और विचित्र होगा। इसलिये जो कुछ मुझे मालूम है मैं बिना कतरव्योंत किए यहां लिखता हूं। यह महाशय कलकत्ते में जब आए तो एक जहाज़ के मेट बन कर आए थे। लन्दन में पहिले यह हजामत और बाल काटते थे और इसीमें इनका हाथ भी खूब मजा हुआ था। इसीलिये ज्योंही कलकत्ते में पैर धरा वैसे ही मेटवृत्ति को लात मार फिर अपनी किसमत बगल में दबा उस्तुरे कैंची के रोजगार में प्रवृत्त हुए। कहते हैं कि कुछ काल बीते वे अपने फ़न में शैतान से भी ज्यादः बढ़ कर प्रसिद्ध होगए। परन्तु शीघ्र ही अपने इस पेशे को फिर छोड़ना पड़ा और युरोपियन व्यापारियों के साथ माल वेचने के लिये वे किश्तियों में सफर करने लगे। इसी हीले से वे अब लखनऊ जा पहुंचे और वहां पहुंच कर रेज़िडेण्ट साहेब से मिले। (यह वह रेज़िडेण्ट साहेब नहीं है जो मेरे समय में थे)। रेज़िडेण्ट साहेब को इस समय अपने सर के बाल घुंघरीले बनवाने की बड़ी इच्छा थी। वह उसी फिक्र में इस समय व्यग्र हो रहे थे कि किसी प्रकार उनके बाल सिजिल होजावें और नख सिख से दुरुस्त होकर वह फिर से नौजवान दीखने लगें। हमारे हजामदास जो अब व्यापारी बने थे, इस अवसर को क्यों हाथ से जाने देने लगे थे। टोह लगते ही व्यापार को लात मार उन्होंने अपना पुराना रोज़गार जारी कर दिया; और रेज़ीडेंट साहेब की मनोकामना पूर्ण करने के लिये उनके यहां जा पहुंचे। हाथ तो मजा हुआ ही था, फिर क्या? जो लगा के इन्होंने रेज़ीडेंट साहेब का बाल अब की इस सफाई से बनाया और दुरुस्त कर दिया कि उनके मुंह की तो काया पलट ही कर दी। बस, फिर क्या था, बड़े साहेब इनके चेले हो गए और ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्होंने आप खुद ले जा के बादशाह से परिचय कराया। यह रेज़ीडेंट साहेब इस समय इङ्गलिस्तान में तशरीफ़ रखते हैं और इनके नाम के साथ इस वक्त एम. पी. (मेम्बर आफ पार्लियामेंट) का एक पुछल्ला लगा हुआ है।

बादशाह के सिर के बाल भी सीधे साधे थे और जैसे कुत्ते की दुम सीधी नहीं होती, वैसेही इनके बाल टेढ़े नहीं होते थे। घूंघर तो दूर रहा, बाल जरा भी खमदार नहीं हो सकते थे। हमारे हजामदास ने फिर अपना करतब दिखाया और बादशाह के सिर के बालों में ऐसी लहर पैदा कर दी कि वह भी बिचारे इनपर रेशखतमी हो गए और इस काम के लिये इनका दम भरने लगे। बस, अब क्या था, हमारे हजामदास की खूब बन पड़ी। चारों तरफ़ से धन और सम्मान की इनपर बौछार होने लगी। जिधर सुनिए उधर इनकी ही चर्चा हो रही है, जिधर देखिए उधर ही हजामदास मियां मिट्ठू बने फिर रहे हैं। बादशाह ने शीघ्र "सरफराज़ खां" की उपाधि से इन्हें विभूषित किया और अवध की अमीर ग़रीब प्रजा अब इनके आगे माथा झुकाने लगी। कलकत्ते के मिस्टर मेट का अब वह ज़माना न रहा, अब वह दरबार के एक बड़े आदमी माने जाने लगे और आसमान फाड़ के उन्हें धन की वर्षा होने लगी। देशी राजवाड़ों में जो आदमी राजा का मुंह

लगा या स्नेहपात्र होता है, उसके लिये धनिक बन जाना कुछ बड़ी बात नहीं है; बात की बात में वह धनसम्पन्न हो जाता है। रिशवत लेने के अतिरिक्त फायदे उठाने की और भी कई एक प्रणालियां हजामदास के हाथ में थीं। शाही मेज़ पर जो शराब उड़ती थी वह सब इनके ही मार्फत से आती थी। इनके अलावे दरबार में और जिन बिलायती चीज़ों की मांग होती, वह भी इन्हींके द्वारा मंगाई जाती, सब चीज़ों में हाजमदास की दलाली ठहर ही जाती थीं। सारांश यह कि उन्होंने इन प्रणालियों से हज़ारों रुपए बना लिए थे। नसीरुद्दीन ने इस हज़ाम को बड़े बड़े इज्ज़त और खिलत दिए और दरबार में वे सबसे ज्यादा उसीपर विश्वास करने लगे। नौबत यहां तक पहुंची कि धीरे धीरे वह बादशाह के साथ बैठ के नित्य प्रति एक ही मेज़ पर खाना खाने लगा और बादशाह के बगल में बैठने का अधिकार मानों उसीको प्राप्त हो गया था और बादशाह भी किसी दूसरे के हाथ की खोली हुई बोतल नहीं पीते थे। बादशाह के चित्त में यह समा गया था कि कहीं मेरे वंशवाले कदाचित मुझे विष न दे देवें। इसके बचाव के लिये हर एक बोतल पर पहिले हजामदास की मोहर लगती थी और फिर वह शाही मेज़ के लिये महल में आती थी। हर एक बोतल को खोलने के पहिले वे पूरी जाँच कर लेते थे और फिर खोलने पर थोड़ी पहिले आप चख लेते थे, इस के पीछे बादशाह का गिलास भरा जाता था। जिस समय मैं मेज़ पर पहिले पहल पहुंचा उस समय ये सब बातें जारी थीं।

बादशाह अवध का एक विश्वासपात्र हजाम अंगरेज़ है, इस बात की शोहरत हिन्दोस्तान भर में फैल गई थी और ख़ासकर बंगाल में यह बात हर एक लड़के के मुंह पर चढ़ी थी। (Calcutta Review) कलकत्ता रेव्यू ने अपने एक लेख में इसे (low menial) हर्कार नौकर कहकर कटाक्ष किया है और पूरे तौर से इसकी दुर्गति की और धज्जियां उड़ाई हैं। परन्तु वह अपने रुपए कमाने की धुन में ऐसा मस्त था कि उसको इन बातों पर कुछ ख्याल न था। वह इसीमें सन्तुष्ट था कि लोग उपहास करें तो करें, हम तो अपने रुपए कमाने में मस्त हैं।

अखबारों में सबसे बढ़कर उनकी निन्दा और उपहास करनेवाला "आगरा अखबार" था जो अब बन्द हो गया है। मेरे लखनऊ से विदा होने के कुछ पहिले हजामदास ने एक अंगरेज़ को सौ रुपए महीने पर नौकर रक्खा था, जिसका काम यह था कि वह आगरा अखबार के ऐसे लेखों का उत्तर प्रत्युत्तर दिया करे जिसमें हजामदास के ऊपर कुछ भी कटाक्ष होवे। यद्यपि इनका निज का कोई (Poet laureate) राजकवि न था पर (London Times) लन्दन टाईम्स की नाईं उनके यहां वैतनिक सम्वाददाता अवश्य बहुत से नौकर थे।

शाही खाने की मेज़ पर जब मैं पहिले पहल पेश किया गया हूं तो बादशाह और उनके मुसाहिब मिस्टर बारबर (हजामदास) के देखने और उनके मिलने की मुझे बहुत बड़ी इच्छा थी। परन्तु अन्य विषयों के वर्णन करने में मैंने इतना समय और स्थान ले लिया है कि इसका वर्णन मैं आपको अब दूसरे अध्याय में सुनाऊंगा॥ [ शेष आगे

ले० केशवप्रसाद सिंह

---

## महाराष्ट्रीय जातिका अभ्युदय

यादव वंश वाले जिस समय इस देश के शासक थे, ईसवी १३वीं सदी के अन्त भाग में, मुसलमानों के साथ महाराष्ट्रों की पहिले पहल मुठ भेड़ हुई थी। ईस्वी १२९४ सन में अलाउद्दीन खिलजी ने आठ हजार घुड़चढ़ी सेना ले आखेट के मिस से दक्षिण देशों पर चढ़ाई कर सहसा महाराष्ट्र देश की राजधानी देवगिरि को जा घेरा। जाती बेर उन्होंने लोगों से यह

प्रसिद्ध किया था कि दिल्लीश्वर के बर्त्ताव से चिढ़ मैं राजमहेन्द्री के राजा के दरबार में अपनी जीविका की खोज के लिये चला हूं। इस झूठी बात को सचमान किसी हिन्दू नरपति ने उससे बाट में रोकटोक न की। कहते हैं, जिस समय अलाउद्दीन ने नगर घेर लिया था, उस समय महाराष्ट्रपति रामदेव राव सपरिवार कहीं देवदर्शन के लिये गए हुए थे। चुपचाप औचक अपनी नगरी के घिर जाने पर अनेक उपाय करने पर भी वह उसकी रक्षा न कर सके। अलाउद्दीन की कुटिल मति के आगे राजा की कुछ भी चतुराई काम न आई। निदान दिल्लीपति की आधीनी मान लेनी पड़ी।

उस समय हिन्दू राजाओं की ऐसी परिपाटी थी कि जब कोई किसी राजा पर चढ़ाई करता था, तब चढ़ाई करने से पूर्व्व ही शत्रु को सूचना दे देता था। बिना पूर्व्व सूचना दिए बैरी पर चढ़ाई करने को वे लोग निन्दित कर्म्म मानते थे और ऐसा करनेवाले को कायर पामर समझते थे। यही परिपाटी मरट्ठों की थी, ऐसा चीनदेश का यात्री (परिब्राजक) हुवेनथशाँग के भ्रमण-वृत्तान्त में लिखा है। यही नीति राजपूताने के राजाओं की भी थी। इसीलिये उस समय के रजवाड़े सदा काल युद्धसज्जा से सुसज्जित रहा करते थे। मुसलमानों की इस परिपाटी से उल्टी रीति थी, इसीसे हिन्दू रजवाड़े सहज ही में उनसे पराजित हो गए थे। सरल युद्धनीति की प्रथा से और परराष्ट्र के बलाबल और उपयुक्त युद्ध चालक नीति (Guiding principal) के बिना हिन्दू राजे युद्ध में पराजित होते चले गए।

राजा के हार जाने पर भी मरट्ठों ने सहज ही में अपनी स्वाधीनता न छोड़ी। मुसलमानों की सौ वर्ष की चेष्टा और उन लोगों की कुटिल रीतिमूलक युद्धप्रणाली के गुण से ईसवी १५वीं सदी के प्रारम्भ में मरट्ठों की स्वाधीनता का लोप हुआ। इसके उपरान्त ढाई सौ वर्ष के बीच महाराष्ट्र देश की जैसी कुछ अवस्था हो गई थी, उसे छत्रपति शिवाजी से रामदास स्वामी ने यों कहा था—

"जितने तीर्थक्षेत्र थे वे सब नष्ट हो गए हैं, ब्राह्मणों के रहने के स्थान सब अपवित्र कर दिए गए हैं, सारी पृथिवी पर युद्ध होने के कारण धर्म्म का नाश हो गया है। ब्राह्मणलोग अपना अपना धर्म्म कर्म्म छोड़ मुसलमानों के रंग ढंग पर चल निकले हैं। धार्म्मिकों का उत्साह शिथिल हो रहा है। प्रजावर्ग के सुख सम्मान का लोप हो गया है। यवन उनसे खोटा बर्ताव कर रहे हैं और मनमानी यन्त्रणा दे रहे हैं।"

देश की इस दुर्दशा को मेटने के लिये महात्मा रामदास ने जो उपाय बताए थे, वे यह हैं—

"धर्म्म की रक्षा के लिये जीवन को न्योछावर कर देश से म्लेच्छाभाव हटाने के लिये देश भर के सब मरट्ठों को एक मत कर अपने धर्म्म को फैलाओ। देवद्रोहिओं को कुत्ते सा दुर्दुरा के देश से निकालो। देवताओं को शीश पर धारण कर, परस्पर में एका बांध बैरिओं को परास्त करने का दृढ़ संकल्प करो। दृढ़ता और अध्यवसाय के साथ बैरिओं पर चारों ओर से आ टूटो। स्वदेशबैरिओं का बिनाश कर अपने देश और धर्म्म की रक्षा करो। निज प्राण से प्यारे धर्म्म की विजय पताका उड़ाने के हेतु नए नए देशों पर चढ़ाई कर महाराष्ट्र धर्म्म और मरट्ठों का राज स्थापन करो।"

सत्रहवीं सदी में मरट्ठों के चित्त की कैसी अवस्था थी और उनमें चिन्ताशील लोगों के चित्त का क्या भाव था, उसका आभास रामदास स्वामी के इन ऊपर कहे हुए उपदेशों से ही पाठक समझ लें। एकनाथ और तुकाराम प्रभृति धर्म्म-शिक्षकों ने निज निज उपदेशों से सोते हुए लोगों को जगा के दृढ़ कर दिया था। उस समय मरट्ठों के सिवाय और और स्थान के रहनेवालों के चित्त में भी धर्म्म के पक्ष पर उत्तेजना आ गई थी। उस समय अपने ऊपर अनेक कष्ट सहन करने पर भी वे निज धर्म्मपथ से विचलित नहीं होते थे।

परन्तु मरट्ठे अपने धर्म्म की ऐसी अवनति सहन न कर सके। तेजस्वी मरट्ठों के देश में रामदास स्वामी के उपदेशों के सुन वीरजाति शीघ्र ही चैतन्य हो उठी। इसी तौर पर रामदास स्वामी के कहे हुए "महाराष्ट्र-धर्म्म" और सहनशील हिन्दू-धर्म्म में भिन्नता आ गई थी।

स्वधर्म्म और स्वराज्य रक्षा तथा अपने धर्म्म के फैलाने की प्रबल लालसा मरट्ठों के चित्त में लग भग डेढ़ सौ वर्ष तक जागती रही। सन् १६४६ ईसवी में शिवाजी ने तोरनागढ़ स्थापन कर मानों मरट्ठों के राज्य की बुनियाद डाल दी थी। सन् १७९९ ईसवी के अन्त में पेशवा बाजीराव सिंहासन पर बैठ स्वराज्य के माना ध्वंससाधन में तत्पर हुए। इस डेढ़ सौ वर्ष में से बिना युद्ध के कोई वर्ष खाली न गया था। इस बात का अचरज है कि इतने दिनों में जितने प्रधान प्रधान संधिपत्रों पर उन लोगों ने स्वाक्षर किए थे, उनमें एक भी ऐसा न था कि जिसमें गौब्राह्मण की रक्षा के बारे में न लिखा हो, अर्थात् शत्रुओं से यह प्रतिज्ञा करवा लेते थे कि हम गौब्राह्मणों की रक्षा करते रहेंगे। माना सन्धिपत्रों पर यह लिखवा लेना उन की प्रधान प्रथा ही थी। यदि आँखों पर अंगरेज़ी चश्मा न लगा दिव्य चक्षु से देखिए तो स्पष्ट देख पड़ेगा कि, गौब्राह्मण की रक्षा और तीर्थस्थानादिकों के संस्कार के ही लिये ईश्वर ने भारत में मरट्ठों का राज्य संस्थापित किया था।

स्वधर्म्मरक्षा के लिये सन् १६४६ ईसवी से सन् १७०७ ईसवी तक अदमनीय पराक्रम के साथ मुसलमानों से युद्ध कर अपने राज्य की बुनियाद मरट्ठों ने सुदृढ़ कर ली थी। सन् १६८० तक महात्मा शिवाजी उन लोगों के मुखिया रहे। मरट्ठों के बैरी अपने लिखे इतिहासों में भले ही मन माना उनके बारे में लिख दें, पर स्वधर्म्म की रक्षा करना ही शिवाजी का मुख्य अभिप्राय था, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। धर्म्मसंस्थापन के लिये स्वामी रामदास जी ने शिवा जी को जो कुछ उपदेश वाक्य कहे थे उनमें से हम कुछ ऊपर लिख आए हैं। रामदास जी ने किसी अनुपयुक्त मनुष्य को उपदेश नहीं दिया था। चिन्ताशील जन मात्र शिवाजी को वीर, धर्म्मात्मा और ज्ञानानुरागी मानते थे।

पाश्चात्य महापुरुषों के साथ तो शिवाजी की तुलना ही नहीं हो सकती थी। क्योंकि सिकन्दर शाह के ऐसा उन्होंने कभी किसी स्वजन-बान्धवों की हत्या कर अपनेको कलुषित नहीं किया था, सीजर के ऐसा अपनी सहधर्म्मिणी के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया था, नेपोलियन की ऐसी अधर्म्मजनक हत्याएं नहीं की थीं, क्रामवेल ने जैसा आयरलैण्ड वालों के विनाश करने का प्रयत्न किया था, शिवाजी ने कभी ऐसे निन्दनीय कर्म्म नहीं किए थे, न फ्रेडरिक से बैरी के वे वशीभूत हुए थे। पक्षान्तर में उनकी सदाचार-परायणता, पराजित शत्रु और स्त्रियों के प्रति जी से यत्न, सज्जनों के सत्संग की लालसा, प्रसिद्ध है। जब किसी राज्य पर वे चढ़ाई करते तो उस समय अपराधी किसानों या परोपकारी जनों पर किसी प्रकार से अत्याचार न करते और मुसलमान पीर, फकीर, मसजिद, कुरान प्रभृति का अवमान न हो, सदाकाल इन बातों का ध्यान रख ,वे जगत में अक्षय यश रख गए हैं। स्वयम् भवानी ने उन्हें स्वराज्य स्थापन की आज्ञा दी थी, शिवाजी को इस बात पर दृढ़ विश्वास था। जब कभी उनपर किसी प्रकार का संकट आ जाता था, तब व्रत कर के वह भवानी की उपासना में चित्त लगाते थे। बखर के लिखनेवालों ने लिखा है कि स्वयम् भवानी की छाया उन पर आ जाती थी और वे उनके हितकर उपदेश उन्हें दे जाती थीं। बम्बई हाइकोर्ट के विचारपति विज्ञवर श्रीयुत महादेव गोविन्द रानाडे महोदय कह गए हैं कि बखर लिखनेवाले जो कुछ लिख गए हैं यथार्थ ही लिख गए हैं। उनका विश्वास है कि संकट के समय जैसा भवानी आज्ञा दे जाती थीं वैसा ही वह कार्य्य करते थे। शिवा जी की भवानी के चरणों पर

अकृत्रिम भक्ति थी और उनका यह दृढ़ विश्वास था कि धर्म्मरक्षा और स्वराज्यस्थापन कार्य्य में मुझे भवानी ने नियोजित किया है। ये बातें उनकी कार्य्य-कलाओं ही से स्पष्ट जान पड़ती हैं। उनकी अटल भक्ति भगवन्निष्ठा और भगवान की अलौकिक शक्ति के ऊपर विश्वास ही ने उन्हें और उनके साथी मरट्ठों को मुगलशाही, आदिलशाही और कुतुबशाही को छाती पर मरट्ठाशाही की बुनियाद बैठाने में समर्थ किया था। क्योंकि इस राष्ट्रीय धर्म्मविश्वास का प्रकृत-स्वरूप ज्ञान बिना हुए महाराष्ट्र जाति के इतिहास का विशेषत्व सम्यक प्रकार से हृदयङ्गम होना असम्भव है। ईसवी सत्रहवीं सदी में महाराष्ट्र साहित्य में इस राष्ट्रीय धर्म्म विश्वास का समुज्वल चित्र प्रतिफलित हो रहा है। खेद है, महाराष्ट्र लेखक ग्राण्ट गफ साहब ने उस ओर ध्यान ही न दिया।

धर्म्मरक्षा में शिवाजी कैसे कृतकार्य्य हुए थे, उसे वह कान्यकुब्जभूषण भूषण कवि ने एक कवित्त में कहा है, यथा—

वेद राख्यो विदित पुरान राख्यो सारसुत,
रामनाम राख्यो अति रसना सुघर में।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखी हैं सिथिहिन की,
कांधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गल में॥
मोड़ राखे मुगल मरोड़ राखे बादशाह,
बैरी पीस राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेज बल शिवराज,
देव राख्यों देवल स्वधर्म्म राख्यो घर में॥
मार कर बादशाही खाकशाही कीन्ही जिन,
जेर कीन्हीं जोर सों लै हद्द सब मारे की।
खिस गई सेखी फिस गई सूरताई सब
हिस गई हिम्मत हजारों लोग प्यारे की॥
बाजत दमामें लाखों धौंसा आगे धुर जात
गरजत ज्यों बरात चढ़े भारे की।
दूल्हो शिवराज भयो दच्छनी दलाले वाले,
दिल्ली दुलहिन भई शहर सितारे की॥

शिवा जी के इस स्वराज्य स्थापन और धर्म्मरक्षा के परिश्रम में जिन्हें लूट मार और युद्ध विजय लालसा ही सूझती है, कदाचित उन्होंने शिवाजी की प्रजापालिनी नीति नहीं पढ़ी है। नहीं तो कभी वे ऐसा न कहते। देखिए महामति जार्ज टामसन साहब ने क्या लिखा है—

"His regulations for the management of the Civil, Judicial and Revenue affairs of his territory, proved him to have been a man of profound wisdom; and it has been admitted by the greatest men who have ever come from this country to India, that in provinces in which the laws of Shivaji remained in force, there was nothing to improve, but much to imitate. In many of the events of history he may be termed not altogether inaptly, the Charlemagne of the East."

राज की भीतरी दशा, शासनप्रणाली, विचार की व्यवस्था और प्रजा से कर उगाही करने की रीति प्रभृति विषयों में शिवाजी जैसी व्यवस्था कर गए थे, महाराष्ट्र देश के अन्तिम राजा बाजीराव के राज समय तक वही रीति चली आई। इसीसे मरट्ठों के राज में प्रजा को किसी प्रकार का कष्ट न था।

एकनाथ और रामनाथ प्रभृति ब्राह्मणों के धर्म्मविषयक उत्तेजनापूर्ण उपदेशों से, राना जी चिटनीस और प्रतापराव प्रभृति क्षत्रिय वीरों के भुज बल से एवं बाला जो चिटनोस प्रभृति कायस्थों के जातिकौशल से, शिवाजी सरीखे प्रतिभाशाली धर्म्मपरायण नरपाल के मुखियापन में जो महाराष्ट्र राज्य की बुनियाद पड़ी थी, उसे उन्हींके पुत्र दुर्वृत्त सम्भाजी की करतूत ने रसातल पहुंचा दिया था। सम्भाजी की वीरता में कसर न थी। परन्तु वे शिवाजी के ऐसे धर्म्मरक्षक न थे। उनके द्वारा कोई राष्ट्रीय कार्य्य सुसिद्ध नहीं हुआ था। वरन् उन्हें ही मुगल सेनापति ने पकड़ के दिल्लीपति बादशाह की आज्ञा से बड़ी निठुराई से मारा।

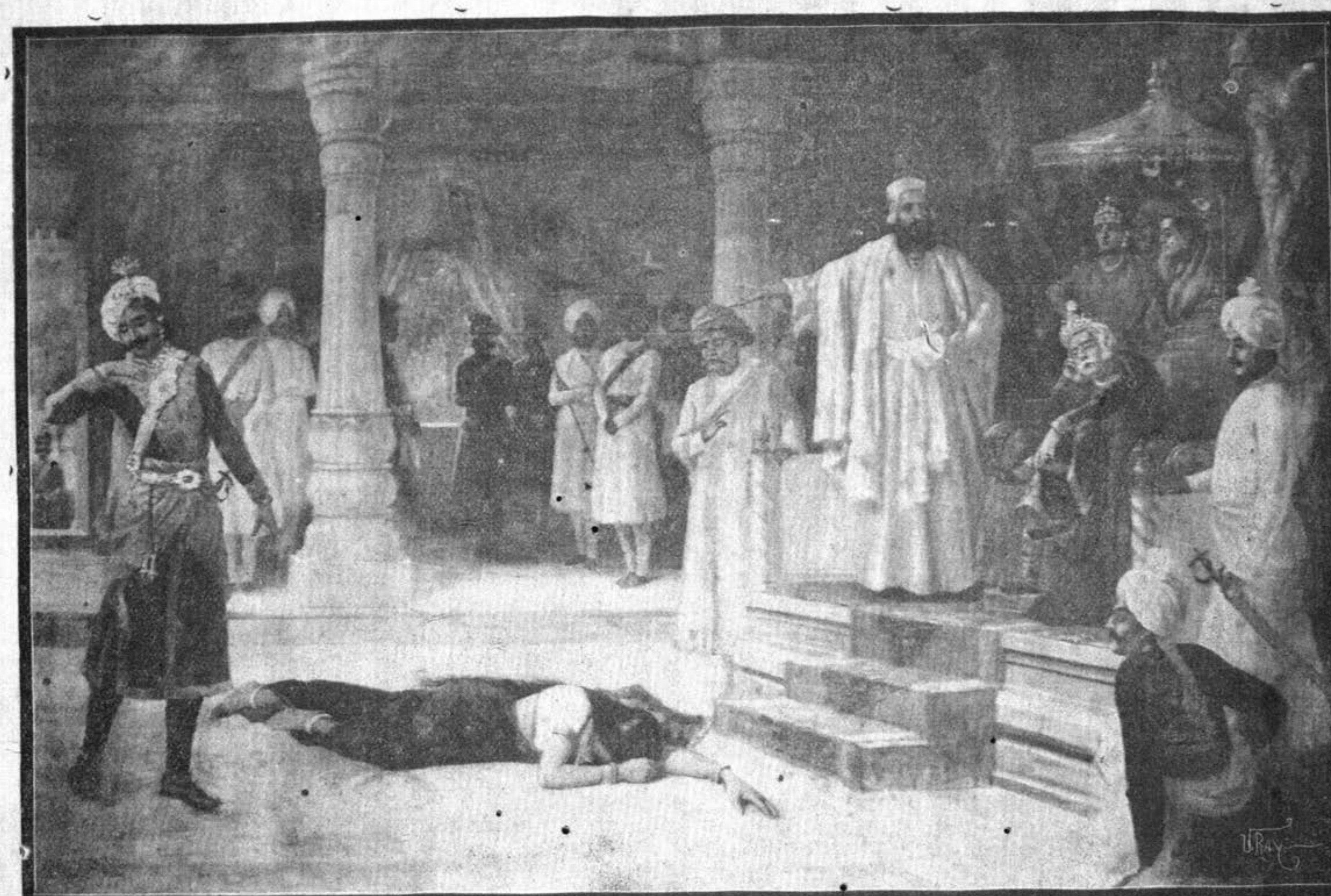
शिवाजी के पुत्र के ऐसे शोचनीय परिणाम के देख मरट्ठे बड़ेही उत्तेजित हो उठे थे। शिवा जी की मृत्यु के उपरान्त औरङ्गजेब बारह लाख सेना ले के महाराष्ट्रों के दबाने के लिये चढ़ आया था। सम्भाजी का विनाश एवं विजापुर और गोलकुण्डा राज्य के ध्वंस होने पर बादशाह विजय प्राप्ति से अति उल्लासित हुए और हिन्दू धर्म्मावलम्बिओं पर घोर अत्याचार करने लगे। कहते हैं कि इस विजयोन्माद से वे अपने आधीन सैन्यवालों के धर्म्मनाश में प्रवृत्त होगए थे। परन्तु उससे उल्टी बात होते देख उन्होंने अपनी इच्छा रोक ली। चाहे जो हो, मुगलों के द्वारा अपने धर्म्म की दुर्गति होते देख, तेजस्वी मरट्ठों की क्रोधाग्नि धधक उठी। उनके नरपति शिवाजी के छोटे लड़के राजाराम यवनों के डर से अपने देश से निकल मन्द्राज हाते के "जिञ्जी" गढ़ में जा बसे थे। रायगढ़ आदि प्रसिद्ध किलों पर मुसलमानों ने अपना अधिकार कर लिया था। उस समय रणपटु मरट्ठे भी थोड़ेही रह गए थे और देश के बैरी और विश्वासघाती भी कम न थे। इतने पर भी वीर मरट्ठों के जी से साहस नहीं हटा था, और अपने धर्म्म और राज रक्षा के लिये वे पीछे नहीं हटे थे, वरन् बैरिओं से पल्टा लेने के लिये कमर बाँधे खड़े थे। धर्म्मोत्साह से उत्तेजित हो समुद्र सी मुगलों की सेना की प्रतिद्वन्दिता में कमर बाँध उठ खडे हुए। जिसे कहीं से एक भाला भी हाथ लग गया वह भी मुगलों से युद्ध करने के जा डटा। उनलोगों के साहस और वीरता के देख सुन बादशाह भी चकित और भीत होगए। अपने धर्म्म और अपने साथिओं की दुर्गति निहार धर्म्म के हेतु उन्होंने प्राण तक न्योछावर करने का चित्त से दृढ़ सङ्कल्प कर लिया था। इसीसे कई स्थानों में बादशाही सेनाओं के पीछे हटना और हार माननी पड़ी थी। थोड़ीसी सेना बारह लाख युद्धनिपुण वीर मुसलमानी सेना से लगातार सत्रह वर्ष लों लड़ के भी बादशाह थोड़ी सी मरट्ठी सेना के न जीत सका और न महाराष्ट्रों के हराने की उसे कुछ भी जी में आशा थी।

इसी बीच में सन् १७०२ ईसवी में राजाराम की मृत्यु हुई। परन्तु तो भी उसके साथिओं का साहस न ठंढा पड़ा। सन् १६८० से ले १७०२ ईसवी तक २२ वर्ष में शिवाजी, सम्भाजी और राजाराम का परलोकवास हुआ, तथापि मरट्ठों के जी का उत्साह और साहस ठंढा न पड़ा।

"छिन्नोऽपि रोहति तरुश्चन्द्रः क्षीणोऽपि वर्द्धते।"

इसी ढंग से मरट्ठोंका अध्यवसाय और विक्रम दिनोदिन बढ़ने लगा। उन लोगों का औचक शत्रु-दल पर आ टूटना और फिर छिपजाना, अद्भुत बल बिक्रम, साहस, अदमनीय युद्ध लालसा, स्वधर्म्म पर अविचलित भक्ति, जाड़ा, गर्मी, वर्षा के दिनों में एक ही सा साहस उधम, भूख, प्यास, परिश्रम पर नेक भी ध्यान न देना, पर शत्रुमुख-मर्दन के हेतु तिनके सा प्राण के वार डालना- ऐसे प्रशंनीय गुण उन्हीं मरट्ठों ही में थे जिन्हें देख देख के मुसलमान चकित हो कहा करते, "ये इन्सान हैं या शैतान!" मरट्ठे सरदारों की मुगलिये सवारों पर ऐसी धाक बैठ गई थी कि कहते हैं जो घोड़ा पानी पी रहा हो तो मरट्ठों की आवाज़ सुन चैांक जाता था और पानी से मुंह हटा लेता था।

कालान्तक मरट्ठों के जब युद्ध में न हटा सके, तब बिवश मोगलिये उनसे युद्ध करना छोड़ बैठे। पर महाराष्ट्रों के विक्रम के आगे उन्हें भागना भी कठिन हो गया। यह देख बूढ़े बादशाह ने बड़े दुख भरे स्वर से यह कहा कि 'व्यर्थ जन्म गमाया' और इसी दुख में उन्होंने प्राण त्याग दिया! तब दक्षिणी देशों में हिन्दूधर्म्म प्रायः निष्कन्टक हो गया। स्वधर्म्म और स्वदेश रक्षा के लिये प्रबल पराक्रान्त मुगल सम्राट के साथ इतने दिनों तक बैर भाव किसी ने भी रखने का साहस न किया। सच्चे धर्म्मोत्साह और गहरी स्वदेशभक्ति के बिना इतने दिनों तक देश भर और जाति के सब लोगों का मिलके अपने धर्म्म और देश के बैरी के हाथ



विराट राजसभा में द्रौपदी।

से बचा लेना बहुत ही कठिन है। सच तो यह है कि इस समय महाराष्ट्रों के चित्त में जैसी अपने देश और धर्म पर दृढ़ता और भक्ति हुई थी वैसी महाराज शिवाजी के समय में भी नहीं हुई थी। वास्तव में जातीय धर्म और स्वदेशानुराग का जो बीज महाराज शिवाजी बो गए थे, उसने फल फूल के अपनी शोभा बढ़ाई थी और अपनी वीरता के समुज्ज्वल प्रताप से दुर्धर्ष मुगलों की आंखों में चकाचौंध लगाई थी।

सम्भाजी की हत्या के उपरान्त उनकी पुत्र-बधू को मुसलमान कैद कर ले गए थे। उन्हे छुड़ाने के लिये १५ वर्ष तक उद्योग करने पर भी मरट्ठे उन्हे न मुक्त कर सके। औरङ्गज़ेब के मर जाने पर महाराष्ट्रों का बल, दर्प और साहस ऐसा बढ़ गया था, कि नवीन बादशाह को विवस हो सन १७०८ में सम्भाजी के पुत्र शाहूजी को छोड़ ही देते बना। बादशाह ने यह अनुमान किया था कि शाहूजी जब छूट जांयगे तब अपने राज्य के बटवारे के लिये राजाराम के पुत्र से अवश्य ही झगड़ा करेंगे, तो उसी कलह की आग में उनका नवप्रतिष्ठित राज्य भस्म हो जायगा, और तब फिर दक्षिण में मुगलों की अमलदारी जम जायगी। यही विश्वास औरङ्गज़ेब का भी था, क्योंकि नवीन सम्राट के ऐसा औरङ्गज़ेब ने भी महाराष्ट्रों के राज्य का भीतरी मतलब नहीं समझा था। महात्मा रामदास स्वामी ने महाराष्ट्रों के हृदयक्षेत्र में जो धर्म्म बीज बोया था, वह ऐसा नहीं बोया गया था जो सहज ही नष्ट हो जाता।

चार ही वर्ष के बीच मरट्ठों ने अपने घरेऊ झगड़ों का निवटेरा कर डाला। फिर दूसरे चार वर्षों में उन्होंने देश की भीतरी बिगड़ी हुई अवस्था को ठीक करके यथोपयुक्त बल भी संग्रह कर लिया। फिर तो सारे भारतवर्ष भर में उन्होंने हिन्दूधर्म्म की पताका उड़ानी विचारी और अपने प्राण न्योछावर करके भी अपनी इच्छा पूरी करनी विचार ली। सन् १७१८ ईसवी में दिल्लीश्वर को पेशवा बालाजी विश्वनाथ जी ने अपने हाथ में कर उन दक्षिण के देशमुखी और चौथ उगाही करने की सनद ले ली थी। यही सनद महाराष्ट्रों को स्वधर्म्म और स्वराज्य विस्तार करने का प्रधान उपाय हो गई। हिन्दूधर्म्म रक्षा के लिये "हिन्दूपत बादशाही" या स्वाधीन हिन्दू साम्राज्य स्थापन की आवश्यकता पहिले ही अनुभूत हो चुकी थी। हिन्दूधर्म्म का निग्रह कर मुसलमान स्वधर्म्मानुरागी मरट्ठों के जी बहुत ही दुखा चुके थे, इसीसे वे इनके पूरे बैरी भी हो गए थे और वे मुगलशाही को उड़ा उसके बदले हिन्दूपत बादशाही बनाने में दृढ़ इच्छा कर चुके थे।

महाराज शम्भु के आदेश से बालाजी विश्वनाथ के पुत्र बाजीराव, दिल्लीपति की सनद लेके काम करने लगे। उत्तर में अटक नद से ले दक्षिण में सेतुबन्धरामेश्वर तक के सम्पूर्ण देशों में, अर्थात् सारे भारतवर्ष भर में, हिन्दू राज्य फैलाने के लिये अपने देशवालों को उन्होंने उभाड़ा था। उस समय दक्षिण में निज़ाम-उल-मुल्क का बड़ा प्रताप चमका था। उसकी कुटिलता से फिर महाराष्ट्र समाज में घर की फूट फैल चली थी। परन्तु बाजीराव ने कई एक युद्धों में उसका दर्प चूर्णकर गुजरात और खानदेश प्रभृति देशों में चौथ उगाही करने की व्यवस्था करली थी। निज़ाम के सम्पूर्ण उद्योग व्यर्थ होगए थे।

इधर उत्तर भारत में महम्मद खां नाम के एक मुसलमान सर्दार ने अपनी प्रभुता फैलाने की लालसा से बुन्देलखण्ड राज्य पर चढ़ाई कर दी। इसके पहिले महाराज शिवाजी के आदेश से वीर छत्रशाल बुन्देले ने बुन्देलखण्ड में हिन्दू राज्य बना लिया था। बूढ़े राजा छत्रशाल बार बार महम्मद खां से लड़ कर भी आत्मरक्षा न कर सके। दिल्लीश्वर के हिन्दू सामन्तगण भी महम्मद खां के पक्ष पर होगए और बुन्देल वंश के बैरी हो उठे। तब विवस हो महाराज छत्रशाल ने मरट्ठों की शरण ली। उन्होंने बाजीराव को लिखा—

जो गति ग्राहगजेन्द्र की सो गति भइ है ग्राज।
बाजी जाति बुन्देल की राखी बाजीलाज ॥

ग्रर्थात् पुराने समय के पुरानों में लिखा है कि ग्राह ग्रौर गजेन्द्र कई सहस्र वर्ष लें जल में लड़ते लड़ते गजराज जब शिथिल होगया, तब उसने ग्रपनी लज्जा बेचाने के लिये कातर होके प्रभु को गुहार लगाई थी ग्रौर उन्होंने ग्राके उसे शत्रु के हाथ से बचाया था, वैसेही छत्रशाल ने ग्रपनी लज्जा बचाने के लिये बाजीराव को विन्तीपत्र लिखा है। इस पत्र को पढ़तेही बाजीराव का हृदय दुख से व्यथित होगया ग्रौर वे बुन्देलखण्ड की रक्षा के लिये ग्रपने दलबल सहित चढ़ दौड़े। ग्रौर शत्रु को हरा कर बुन्देलखण्ड को मुसलमानों से बचा उन्होंने उसे हिन्दुग्रों का राज्य बना रहने दिया। जब विजय प्राप्त कर परस्पर में बाजीराव छत्रशाल से मिले हैं, तब ग्रान्दाश्रु-विगलित नेत्रों से गले गले मिल सबके सम्मुख पुकार के छत्रशाल ने बाजीराव को ग्रपना तीसरा पुत्र स्वीकार किया। ग्रपने से हारे हुए बैरिग्रों के साथ मरट्ठों ने कोई बुरा बर्ताव नहीं किया था।

बाजीराव के समय एक प्रसिद्ध धर्म्मयुद्ध हुग्रा था। पश्चिम समुद्र के किनारे बसीन साष्टी प्रभृति स्थान पुर्त्तकेसों के ग्रधिकार में थे। वहां की हिन्दू प्रजा ने ग्रपने शासकों से दुखी होके छत्रपति महाराज शाहू की सेवा में एक ग्रावेदन पत्र इस मर्म्म का भेजा था,—

"ईसाइग्रों के ग्रत्याचार से हमलोगें को ग्रपने धर्म्म में रहना कठिन हो रहा है। ग्राप गोब्राह्मण प्रतिपालक हैं, इसलिये दयाकर हमलोगों की पुकार सुन इस देश के डूबते हुए धर्म्म को उबारिए।" उस समय बाजीराव निज़ाम के साथ युद्ध में उलझ रहे थे। इसलिये महाराज शाहू की ग्राज्ञा से बाजीराव के छोटे भाई चीमाजी ग्राप्पा ने बसीन ग्रौर साष्टी प्रदेश के हिन्दुग्रों के धर्म्म की रक्षा की। थोड़े ही दिनों में साष्टी पुर्त्तकेसों के हाथ से निकल के मरट्ठों के ग्रधिकार में तो ग्रागई, पर बहुत थोड़ेही दिनों तक रही। यूरोपियों की तोपों के गोलों की वर्षा से मरट्ठों के सवार बार बार तितर बितर हो हो होगए, यह देख एक दिन चीमाजी सब सर्दारों को समेट कर बोले "जैसे हो वैसे ग्राज ग्रवश्य ही किले में घुसनाही चाहिए, ग्रौर जो यह ग्रापलोगों से न हो सके तो मुझे इस ढंग से तोप के मुह पर रख के ऐसा पलीता दागो कि मेरा धड़ गढ़ के ग्रन्दर जा पड़े"। इस वाक्य को सुन मरट्ठों का साहस बढ़ गया ग्रौर सब एक स्वर से हर हर हर महादेव कहते हुए एक साथ किले पर जा टूटे ग्रौर किला फतह कर लिया। इस युद्ध के उपरान्त एक ग्रति ललाम ललना चीमा पर तन मन से ग्रासक्त होगई, परन्तु लक्ष्मण जी सरीखे जितेन्द्रिय चीमाजी ने ग्राप उसे ग्रहण न कर ग्रपने बड़े भाई के पास भेज दिया। निदान बाजीराव ने उस ग्रबला को महलों में रख लिया। बुन्देलखण्ड ग्रौर बसीन विजय के उपरान्त लोग महाराष्ट्रों को "शरणागत रक्षक" ग्रौर "दीनदयाल" कहने लगे।

बाजीराव की मृत्यु के पहिले उत्तर में यमुना ग्रौर दक्षिण में तुङ्गभद्रा नदी के तट के नगरसमूह मुसलमानों के ग्रधिकार से निकल गए थे। मुसलमानों का ग्रधिकार घटने से हिन्दुग्रों की हिन्दुग्रानी बढ़ी ग्रौर ये लोग ग्रानन्द से रहने लगे। डूबती हुई वेदविद्या के पुनःप्रचार के लिये बाजीराव ने ग्रनेक उद्योग ग्रौर प्रयत्न किए थे। ब्रह्मेन्द्र स्वामी नाम के एक महात्मा बाजीराव के उपदेशक थे। जैसे रामदास स्वामी राजनीति ग्रौर धर्म्मनीति का उपदेश दे मरट्ठों को उत्तेजित किया करते थे, वैसेही यह भी उपदेश किया करते। जैसे इस देश में राजनीति ग्रौर धर्म्मनीति का सम्मिलन है, ऐसा ग्रौर कहीं भी नहीं है।

[ क्रमशः

ले०—कार्त्तिक प्रसाद

———

# साहित्य-समाचार ।

मराठी-साहित्य ।



देखते ही देखते किसी ने
पगड़ी उड़ादी !
विलक्षण जादू !! विलक्षण
इन्द्रजाल !!!

अंग्रेज़ी-साहित्य ।



ओह, कोट न दारद ! पहने ही
पहने !! ग़ज़ब !!!

बँगला-साहित्य ।



अरे यह क्या ! डुपट्टा गायब ! घड़ी
भी गायब !!! और रूमाल भी !!!
आश्चर्य्य ! आश्चर्य्य !! आश्चर्य्य !!!
अद्भुत व्यापार !! अद्भुत माया !!!

## हिन्दी—साहित्य ।




लोगों को अब समझ पडैगा कि मैं भी कोई चीज हूं ! मुझे देख देख कर उन्हें हैरत होगी कि किस झपाटे से मैंने अपनी उन्नति कर डाली ! कैसा हाथ मारा है ! भई वाह !! पेरिस के महाविद्यालय मे मैंने इस विज्ञान की शिक्षा पाई है !!!

मजाल है किसीको जरा भी इसकी खबर लग जाय। और अगर लगै भी तो क्या ? "टाइम्स" और "ग्लोब" की रक्षक, क्षमा की गोद मेरे लिये जिबराल्टर के किले का काम देहोगा !

—ले० महावीरप्रसाद द्विवेदी।

# सरस्वती

सचित्र
मासिक पत्रिका

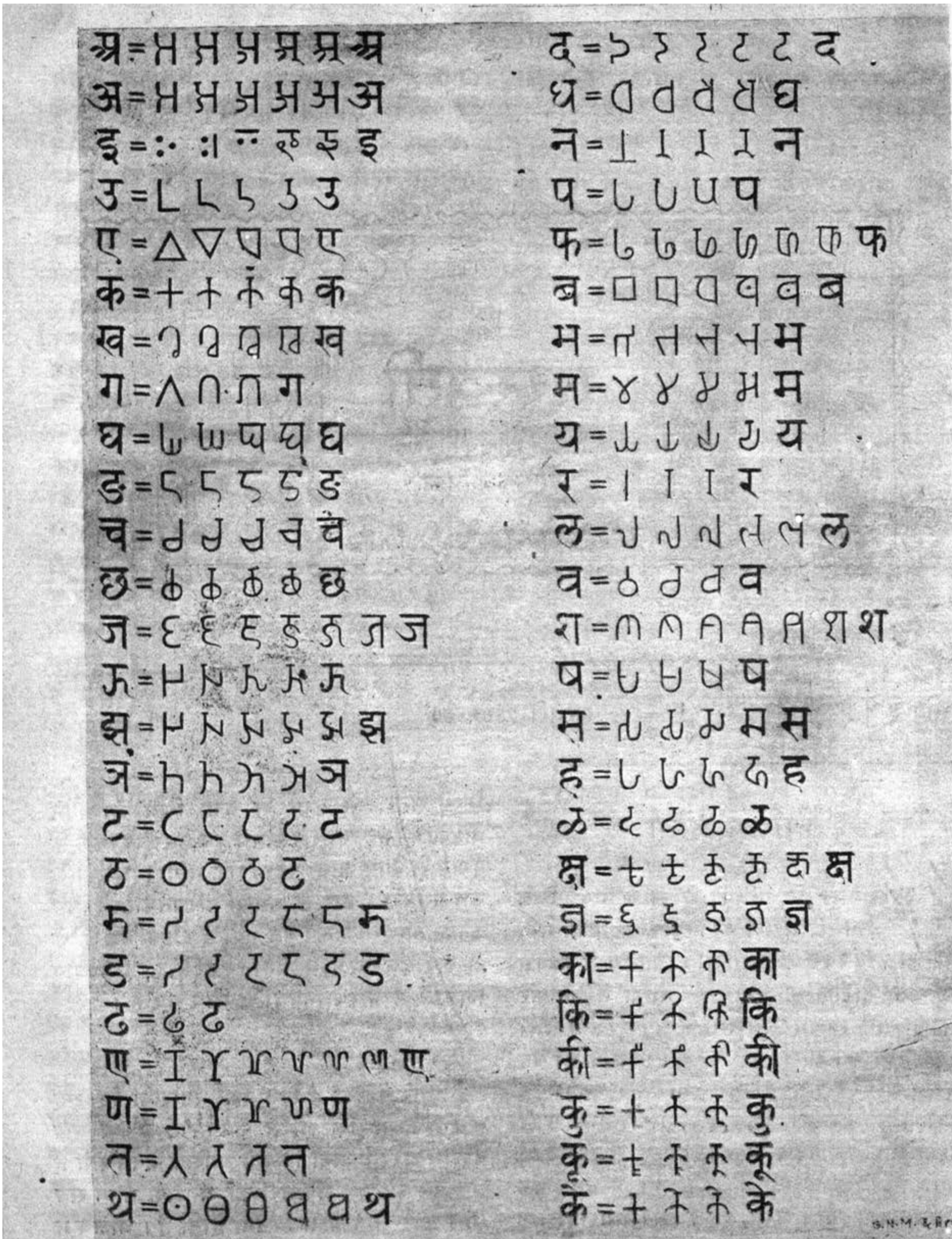
भाग ३ ] फरवरी १९०२ ई० [ संख्या २


## विविध वार्ता

इस मास की पत्रिका के साथ एक चित्र नागरी अक्षरों की उत्पत्ति का दिया गया है। इसे उदयपुर ऐतिहासिक कार्य्यालय के अध्यक्ष पण्डित गौरीशङ्कर हरीचन्द ओझा ने बनाकर काशी नागरीप्रचारिणी सभा के अर्पण किया था। इस बात को आज कई बर्ष हुए। सभा की यह इच्छा थी कि उक्त पण्डित जी यदि कृपा कर इसका विवरण भी लिख देते तो दोनों साथ ही प्रकाशित कर दिए जाते। परन्तु न जाने क्यों आजतक पण्डित जी ने सभा की प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया। अस्तु, आज हम नागरी प्रचारिणी सभा की कृपा से उक्त चित्र को अपने पाठकों की भेट करने में समर्थ हुए हैं। उक्त चित्र के देखने से स्पष्ट जान पड़ेगा कि नागरी अक्षरों के रूप में किस प्रकार से क्रमशः परिवर्तन होते होते उनका आधुनिक रूप बन गया है। इन अक्षरों के जो रूप दिए गए हैं, वे कल्पित नहीं हैं, वरन् प्राचीन शिलालेखों और दानपत्रों से लिए गए हैं।

* * *

हमारे पाठकों में से अनेक महाशयों को यह न ज्ञात होगा कि भारत गवर्नमेण्ट के उच्च उच्च पदाधिकारी कितना कितना मासिक वेतन पाते हैं और इन बड़े बड़े अफसरों का मासिक वेतन सब मिला कर प्रति मास कितना होता है। आज हम



नागरी अक्षरों की उत्पत्ति का चित्र

कुछ चुनें चुने अफसरों के मासिक वेतन की सूचना देते हैं।

| | |
|---|---|
| वाइसराय | २५०००) |
| वाइसराय को फुटकर व्यय के लिये | ३२४९३) |
| गवर्नर मद्रास | १००००) |
| फुटकर व्यय के लिये | ८०००) |
| गवर्नर बम्बई | १००००) |
| फुठकर व्यय के लिये | ८०००) |
| प्रेसिडेण्ट कौंसिल गवर्नर जेनरल | ६४००) |
| लेफ्टनेण्ट गवर्नर बङ्गाल | ८३३३) |
| फुटकर व्यय के लिये | २७२९) |
| लेफ्टनेण्ट गवर्नर पश्चिमोत्तर प्रदेश | ८३३३) |
| फुटकर व्यय के लिये | ८०००) |
| लेफ्टनेण्ट गवर्नर पञ्जाव | ८३३३) |
| फुटकर व्यय के लिये | ५१८८) |
| चीफ जसटिस बङ्गाल | ६०००) |
| मेम्बर कौंसिल गवर्नर जेनरल | ६४००) |
| चीफ जसटिस मदरास | ५०००) |
| " बम्बई | ५०००) |
| चीफ कमिश्नर आसाम | ४१६६) |
| " मध्यप्रदेश | ४१६६) |
| मेम्बर कौंसिल मद्रास | ५११६) |
| " बम्बई | ५१२०) |
| रेजिडेण्ट हैदराबाद | ४८४०) |
| एजेण्ट गवर्नर जेनरल राजपुताना | ४०००) |
| " मध्य भारत | ४०००) |
| " वड़ौदा | २५००) |
| कमैण्डर इन चीफ | ५८३४) |

यह सब जोड़ने से दो लाख से ऊपर प्रतिमास पड़ता है। संसार में और जहां जहां उच्च पदाधिकारी हैं किसीको इतना वेतन नहीं मिलता।

* * *

गत जनवरी मास के पहिले सप्ताह में इन प्रान्तों के लेफ्टनेण्ट गवर्नर सर जेम्स लैटूश जब काशी आए थे तो उस समय यहां की नागरी-प्रचारिणी सभा ने एक अभिनन्दनपत्र श्रीमान को दिया था, जिसमें सभा की अवस्था का वर्णन कर सभा ने श्रीमान से प्रार्थना की थी कि वे प्रारम्भिक शिक्षा और राज्यप्रवन्ध के सम्बन्ध में हिन्दी भाषा और नागरी अक्षरों के स्वत्वों पर विचार और उनका समर्थन करेंगे। श्रीमान ने इस अभिनन्दनपत्र के उत्तर में कहा कि मैं श्रीमान सर एण्टनी की आज्ञा का अनुकरण करुंगा, उसके आगे न बढ़ूंगा। श्रीमान का कहना बहुत उचित था। हिन्दी के प्रेमी भी यही चाहते हैं कि वे कृपाकर सर एण्टनी म्याकडनेल नें जो आज्ञा दी है उसके अनुसार कार्य होने की ओर ध्यान दें, और ऐसा ध्यान रक्खें कि जिसमें उस आज्ञा का पूरी तरह से पालन हो। श्रीमान सर लैटूश के वचनों का मन-माना अर्थ लगा कुछ मुसलमान भाई उत्साहित हो व्यर्थ को हिन्दी का विरोध ठान वैठे हैं। हमारी समझ में तो श्रीमान के वचनों में कोई बात ऐसी नहीं है जिससे मुसलमान उत्साहित और हिन्दू निरुत्साहित हों। सब लोगों को अपने अपने कामों और न्याय की ओर ध्यान देना चाहिए। वृथा आपस में द्वेष और लड़ाई झगड़ों के बढ़ाने से किसीको भी लाभ न होगा।

* * *

कई मास हुए कि एक यहूदी महाशय ने तीस लाख रुपया हमारे सम्राट श्रीमान सप्तम एडवर्ड के पास गुपचुप भेज दिया और यह प्रार्थना की कि यह रुपया दमे के रोगियों के हित में व्यय किया जाय। बहुत काल तक इस गुप्त दानी के नाम धाम का पता किसीको न लगा। अनेक लोगों ने अनेक अनुमान किए, पर किसीका अनुमान ठीक न उतरा। अब इतने दिनों के पीछे इनके नाम का पता चला है। इन महाशय का नाम सर अर्नेष्ट कैसल है। वे आजकल भारतवर्ष में आए हुए हैं। इधर कई वर्षों में अंग्रेज जाति ने कई बड़े बड़े दान किए हैं, जिनमें से कई एक का उल्लेख हम नीचे करते हैं। मिस्टर कार्नेजी को हमारे पाठक भूले न होंगे, इन्होंने तीन करोड़ रुपया स्काटलैण्ड-

वासियो की शिक्षा के लिये दिया है। मिस्टर टामस हालोवे ने एक करोड़ ५ लाख रुपया हालोवे कालेज के लिये दिया था। लार्ड ईवीह ने तीन लाख ७५ हजार रुपया डबलिन में दीन दुखियों के निवासस्थानों के लिये दिया था। पचहत्तर लाख रुपया मिस्टर जार्ज पोवेडी ने गरीब लोगों की रक्षा के लिये दान किया था। उनतालीस लाख रुपया सर मेसन ने एक कालेज के स्थापित करने में व्यय किया था। पन्द्रह लाख सर टामस लिपटन ने इस लिये दिया था कि जिसमें गरीब लोगों को भोजन सस्ता मिल सके। पन्द्रह लाख रुपया मिस्टर पास मोर ने फ़्री पुस्तकालयों के लिये दिया है और अट्ठारह लाख रुपया सर जान मैपल ने एक अस्पताल के लिये दिया है। इन सब दानों की चर्चा सुन के अंग्रेज जाति के प्रत्येक बालक तक का मस्तक ऊंचे उठ जाता होगा। पर हमें केवल आंखें नीची कर लेने के और चाराही क्या है। हमारे प्यारे मित्र चाहे मुट्ठी मुट्ठी अन्न और सत्रों में ही भारत के प्रसिद्ध दान को मान लें और लोगों को निरुद्यमी बनाने ही में अपना गैारव मान रक्खें, पर वास्तव में निर्बुद्धि अदुरदर्शी पढ़े लिखे लोगों को वृटिश दान की चर्चा सुन के अपना सिर नीचे झुका लेने को छोड़ और कोई उपाय नहीं सूझता। गत वर्ष के अकाल में ७५००० बालक और बालिकाएं अपने और साथही भारतमाता के फूटे भागों से माता पिता को खो बैठे, किसीने उनकी सुध भी न ली। विचारे मिशनरी लोगों ने उन्हें अपनाया और उससे अपने धर्म्म की उन्नति कर हम पर कृतज्ञता का बोझ रक्खा। ऐसी अवस्था में पञ्जाब के कुछ वीर पुरुषों ने कतिपय अनाथ बालक और बालिकाओं की रक्षा की। पर हमारी वृद्धा भारत माता इस हृदयविदारक और करुणोत्पादक अवस्था को देख सुन कर भी न टसकी, ज्यों की त्यों घोर निद्रा में पड़ी रही। उस घोर निद्रा का प्रभाव यहां तक बुरा पड़ा कि सहायता देना ते दूर रहा, अविद्या के अन्धकार से भारतवासी यहां तक आच्छादित रहे कि उन्होंने इन अनाथ मातृ-पितृविहीन बालकों की रक्षा करनेवालों को दो मीठी उत्साह देने वाली बातों की अपेक्षा उन्हें अपने प्रलाप वाक्यों से ही स्वागत किया। अस्तु, हम इन प्यारे मित्रों से आंख खोल कर और पक्षपात छोड़ कर विचार करने की प्रार्थना करते हैं। प्यारे भारतवासियो, प्यारे देशहितैषी लोगो, अपने देश के, अपने कुल के, अथवा अपने ही नाम पर मरने वालो, जागो, स्वार्थ छोड़ो; अपने देश के नाम पर, अपने धर्म के नाम पर, अपने इष्ट देवों के नाम पर, अपने उस करुणावरुणालय जगदीश्वर के नाम पर जिसने तुम्हें उत्पन्न करके और दस लोगों की सहायता करने के योग्य बनाया है, अपने पुण्य के नाम पर कि जिससे तुम परलोक में सुख भोगा चाहते हो, इन अनाथ दीन हीन बालकों की रक्षा, उनका भरण पोषण करने से मुंह न मोड़ो। देखो इस समय फिर अकाल पड़ा हुआ है, फिर अनाथ बालक मारे मारे फिर रहे हैं, कुछ ते उनपर दया करो। पंजाब देश से फिर वीर लोग इनकी रक्षा को गए हुए हैं। उन्हें सहायता दो। हम अब विशेष न कहेंगे। इस समय फिर अकाल ने अपना जोर दिखाया है और पंजाब से पुनः उत्साही लोग अनाथ बालकों की रक्षा के लिये गए हुए हैं। देशहितैषी मात्र का कर्तव्य है कि उनकी सहायता करें।

* * *

हमारे पाठकों को यह सुन कर विशेष आनन्द होगा कि काशी नागरीप्रचारिणी सभा के स्थायी कोश में अबतक दस हजार रुपया एकत्रित हुआ है और सभा एक डेपुटेशन स्थान स्थान से धन एकत्रित करने के लिये १५ फरवरी को बाहर गया है। हमें पूर्ण आशा है कि हिन्दी के प्रेमी इसकी पूरी सहायता करेंगे और यह अपने उद्देश्य में सफल होगा। सभा ने अपने भवन के लिये एक स्थान जो काशी म्युनिसिपल बाग के अन्दर है, ३५०० रुपया पर खरीद लिया है। यह १८७ फीट लम्बा और १३४ फीट चौड़ा है। इस स्थान पर एक अच्छा भवन

बन सकेगा। हिन्दी हितैषियों को उचित है कि इस समय सभा की पूरी पूरी सहायता करें जिसमें भवन शीघ्रही बन जाय और स्थायी कोश स्थापित हो कर सभा भी चिरस्थायी हो जाय।

## भवभूति

[गत अंक के आगे]

९—अनेक विद्वानों का मत है कि भवभूति ने पहले महावीरचरित, फिर मालतीमाधव और फिर उत्तररामचरित लिखा है। इन ग्रन्थों की लेखप्रणाली, इनके अर्थगौरव और इनके रसाल भावों का विचार करने से यह सिद्धान्त युक्तिसङ्गत जान पड़ता है। महावीरचरित में वीर, मालतीमाधव में शृङ्गार और उत्तररामचरित में करुण रस की प्रधानता है। इन नाटकों में क्या गुण है, और क्यों भवभूति की इतनी प्रशंसा होती है, इन सब बातों का विचार विष्णुशास्त्री ने बड़ी ही योग्यता से अपने निबन्ध* में किया है। अनेक उत्तमोत्तम पद्यों को उद्धृत कर के उन्होंने उनकी सयुक्तिक समीक्षा की है। भवभूति के नाटकों के कथानक की भी शास्त्री जी ने प्रशंसा की है। परन्तु मालतीमाधव के कथानक के सम्बन्ध में डाक्टर भाण्डारकर की सम्मति उनकी सम्मति से नहीं मिलती। डाक्टर साहब का कथन है कि इस नाटक में जो श्मशान-वर्णन है वह असम्बद्ध सा है; मूल कथानक में वह जोड़ सा दिया गया है। वे यह भी कहते हैं कि कपालकुण्डला के द्वारा मालती का हरण किया जाना कवि ने केवल इस लिये दरसाया है जिससे वियोगियों की दशा का वर्णन करने के लिये उसे अवसर मिले। डाक्टर भाण्डारकर ने और भी दो एक बातें शास्त्री जी के मत के प्रतिकूल कही हैं। डाक्टर साहब के बतलाए हुए दोष ऐसे हैं जो सामान्य जनों के ध्यान मे नहीं आ सकते। नाट्यशास्त्र के आचार्य्यों की दृष्टि में ऊपर कही गई बातें चाहे भले ही सदोष हों, परन्तु हम, इस विषय में, यह अवश्य कहेंगे कि भवभूति का किया हुआ श्मशानवर्णन अद्वितीय है। बीभत्स रस का ऐसा अच्छा उदाहरण संस्कृत के और और नाटकों अथवा काव्यों में हमने नहीं देखा। भवभूति का विप्रलम्भवर्णन भी एक अद्भुत वस्तु है। अतएव भवभूति के ये दोष यदि दोष कहे जा सकते हैं तो क्षम्य हैं। यदि वह इन उपर्य्युक्त बातों को मालतीमाधव से निकाल डालता तो हम बीभत्स और वियोग शृङ्गार के अलौकिक रस से परिप्लुत उसकी अनूठी कविता से भी वञ्चित रहते। पण्डित माधवराव वेंकटेश लेले ने भवभूति के सब नाटकों की समालोचना मराठी में की है और अनेक दोष दिखलाए हैं, परन्तु इस छोटे से निबन्ध में हम उन सब दोषों का विचार नहीं कर सकते।

*पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री का किया हुआ इसका हिन्दी अनुवाद अवलोकनीय पुस्तक है।

१०-(क) अपने नाटकों के बनाने का कारण भवभूति ने कहीं भी स्पष्ट नहीं लिखा; परन्तु उसके नाटकत्रय में वर्णित वस्तुजात और पात्रों के क्रियाकलाप आदि से उस बात का पता लगता है। जिस समय भवभूति का प्रादुर्भाव हुआ है उस समय, इस देश में, बौद्धधर्म्म का ह्रास हो रहा था। षष्ठ शताब्दी मे उद्योतकर, सप्तम शताब्दी में कुमारिल भट्ट और अष्टम शताब्दी में शङ्कराचार्य्य ने बौद्धधर्म्म को उच्छिन्न करने में कोई बात उठा नहीं रक्खी। वैदिक धर्म्म के प्रतिपादन और बौद्धधर्म्म के संहार करने के लिये इन महात्माओं ने जो कुछ किया है वही भवभूति ने भी किया है। इन्होंने स्पष्ट रीति से बौद्धधर्म्म का खण्डन किया है, परन्तु भवभूति ने स्पष्ट कुछ नहीं कहा। अनेक स्थलों पर अपने नाटकों में वैदिक धर्म्म की श्रेष्ठता और बौद्ध धर्म्म की हीनता के उदाहरण दिखलाते हुए, दोनों प्रकार के धर्म्मावलम्बियों की दिनचर्य्या का चित्र खींच कर भवभूति ने उसे अभिनय देखनेवालों के सम्मुख उपस्थित किया है, जिसका यही तात्पर्य है कि वैदिक धर्म्म ग्राह्य और बौद्ध धर्म्म त्याज्य है।

(ख) मालतीमाधव की प्रसिद्ध पात्र कामन्दकी बौद्ध सन्यासिनी थी। वह अपने आश्रम धर्म्म के विपरीत मालती और माधव को विवाह सूत्र से बांधने के बखेड़े में पड़ी थी। उसकी शिष्य सौदामिनी बौद्धसम्प्रदाय को त्याग कर अघोरघण्ट और कपालकुण्डला के तान्त्रिक जाल में फँसी थी। ये तान्त्रिक ऐसे दुराचारी और नृशंस थे कि अपनी इष्ट देवी चामुण्डा के सम्मुख समय समय पर नरवलि दिया करते थे। मालती माधव में यह बौद्धधर्म्म के अधःपतन का चित्र है। वैदिक धर्म्म के अनुयायियों की श्रेष्ठता का चित्र वीरचरित और उत्तरचरित में है। इन दोनों नाटकों में रामचन्द्र, लक्ष्मण, लव, कुश, सौधातकि, जनक, वशिष्ठ, विश्वामित्र और जानकी आदि के चरित्र द्वारा भवभूति ने ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, राजा, प्रजा और तपस्विवर्ग के आचार और व्यवहार की अवस्था का ऐसा अच्छा आदर्श दिखलाया है कि जिसके देखने से वैदिक धर्म्म का स्वरूप नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है और उसमें आन्तरिक श्रद्धा उत्पन्न होती है। दोनों धर्म्मों के अनुयायियों के आचरणानुरूप दो प्रकार के उच्च और नीच चित्र चित्रित कर के कवि ने उनकी उच्चता और नीचता का भेद बड़े ही कौशल से दिखलाया है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि कवि ने यह सब बौद्धधर्म्म की दुरवस्था सूचित करने और अभिनय देखने वालों के मन में उस ओर अनास्था उत्पन्न करने ही के लिये किया है। भवभूति के पूर्ववर्ती विद्वानों ने बौद्धधर्म्म को छिन्नमूल करने के लिये उसपर प्रत्यक्ष कुठार प्रयोग किया था; परन्तु भवभूति ने वही काम उस सम्प्रदायवालों को प्रकाशरूप से बिना किसी प्रकार का मानसिक क्लेश पहुँचाए, अपने नाटकों द्वारा कर दिखाया। भवभूति के नाटकों को विचारपूर्वक देखने से यही भावना मन से उत्पन्न होती है कि बौद्ध धर्म्म निस्सार और वैदिक धर्म्म परम सारवान् है।

११—(क) नाटक लिखने में भवभूति का आसन कालिदास से कुछ ही नीचे है। कोई कोई तो उसे कालिदास का समकक्ष और कोई कोई उससे भी बढ़ गया बतलाते हैं। भवभूति ने मनुष्यों के आन्तरिक भावों का कहीं कहीं ऐसा उत्कृष्ट और ऐसा सजीव चित्र खींचा है कि उसे देख कर कालिदास का विस्मरण हो जाता है। खेद है उसकी इस अद्भुत शक्ति का विकाश देखने और तद्द्वारा एक अकथनीय आनन्द प्राप्त करने के लिये संस्कृत न जाननेवालों का मार्ग रूद्ध सा हो रहा है। हां, यह सत्य है कि, लाला सीताराम, बी० ए०, ने भवभूति के तीनों नाटकों के अनुवाद हिन्दी में किए हैं; परन्तु, जहां तक हम समझते हैं, उनके अनुवादों से भवभूति की अलौकिक कविता का अनुमान होना तो दूर रहा, उन्हें पढ़ कर पढ़नेवालों के मन में मूल कविता के विषय में घृणा उत्पन्न होने का भय है। कहां भवभूति की सरस, प्रासादिक और महा आल्हाददायिनी कविता और कहां अनुवादक जी की नीरस, अव्यवस्थित, काव्यलक्षणहीन, दोषदग्ध अनुवादमाला? परस्पर दोनों में सौरस्यविषयक कोई सादृश्य ही नहीं! कौड़ी मोहर, आकाश पाताल और ईख इन्द्रायण का अन्तर!! अपने कथन की सत्यता को सिद्ध करने के लिये हम, यहां पर, मालतीमाधव से दो एक उदाहरण देना चाहते हैं, जिनको देख पढ़नेवाले स्थालीपुलाकन्याय से मूल और अनुवाद का अन्तर समझ जावैंगे।

(ख) अपनी सखी लवङ्गिका के धोखे माधव को आलिङ्गन करके, अनन्तर उसे पहचान, जब उससे मालती हट गई, तब माधव कहता है—

एकीकृतस्त्वचि निषिक्त इवावपीड्य
निर्भुग्नपीनकुचकुड्मलयाऽनया मे।
कर्पूरहारहरिचन्दनचन्द्रकान्त-
निष्यन्दशैवलमृणालहिमादिवर्गः॥

भावार्थः—अछूते पीन पयोधर रूपी मुकुलों को धारण करनेवाली इस मालती ने, कर्पूर-हार,

हरिचन्दन, चन्द्रकान्त मणि, शैवल (सिवार), मृणाल और हिम आदि शीतल पदार्थों को द्रवीभूत करके, उन्हें एकत्र निचोड़, मेरी त्वचा पर उनके रस का लेप सा लगा दिया। इसका अनुवाद सुनिए—

जनु तुषार चन्दन रस बोरी
छिरकति अङ्ग मृनाल निचोरी।
उभरे उर (!) मो हिए छुवावति
जनु कपूर तन घोरि लगावति ॥

मूल के कर्पूर, हरिचन्दन, मृणाल और हिम को लेकर हार, चन्द्रकान्त और शैवल को छोड़ दिया! मूल में एक ही क्रिया है; वह भी भूत-कालिक है। अनुवाद में छिरकति, छुवावति और लगावति तीन क्रियाएं हैं और तीनों वर्तमान कालिक! मानो उस समय मालती माधव का आलिङ्गन किए हुए थी। 'पीन कुच' का अर्थ उरोज नहीं किया गया; किया गया है उर! परन्तु मूल में उर और उरोज दोनों में से किसीके छुवाने की साफ साफ बात नहीं है। उरोज स्पर्श का अर्थ ध्वनि से ज्ञात है। ध्वनिही में रस है; ध्वनिही में आनन्द है। 'छुवावति' कहने की अवश्यकता नहीं। भवभूति ने दूसरा चरण बहुत समझ बूझ कर लिखा है और लिख कर अपनी अखण्ड सहृदयता का परिचय दिया है। मूल कवि की वह सहृदयता अनुवाद में ख़ाक में मिला दी गई। मूल में जितने पदार्थों के नाम आए हैं, उन सबके रसलेप के लगाने की उत्प्रेक्षा है; परन्तु अनुवाद में केवल कपूर लगाने की है। सारांश यह कि मूल में जो भाव है और उस भाव में जो रस है, उसको दर्शित करने में असमर्थ होकर अनुवादक जी ने किसी प्रकार चौपाई के चार पैर मात्र खड़े कर दिए!

(ग) एक और उदाहरण लीजिए। मनहीं मन माधव कहता है—

पश्यामि तामित उतः पुरतश्च पश्चा-
दन्तर्बहिः परित एव विवर्त्तमानाम्।
उद्बुद्धमुग्धकनकाब्जनिभं वहन्ती-
मासक्ततिर्य्यगपवर्त्तित दृष्टिवक्त्रम् ॥

भावार्थः—मुझमें अनुरक्त होने के कारण तिरछा देखनेवाली और फूले हुए मनोहर सुवर्ण-सरोरुह के समान मुख को धारण करनेवाली उस मालती ही को मैं यहां वहां, आगे पीछे, भीतर बाहर, सब कहीं विद्यमान देख रहा हूं। इसका अनुवाद एक दोहे में समाप्त कर दिया गया है। देखिए—

चितवति बिकसे कमल सी खुले कछुक दृग कोर।
बाहर भीतर लखि परै घूमति सी चहुं ओर ॥

भवभूति की कविता की इस विडम्बना का कहीं ठिकाना है? इसी लिये कहते हैं कि संस्कृत न जाननेवालों को उसके नाटकों का पूरा पूरा आनन्द नहीं मिल सकता। भवभूति की मधुमयी कविता का स्वाद जिनको लेना हो वे यदि संस्कृत से अनभिज्ञ हों तो उनको वह भाषा सीखनी चाहिए, अथवा जब तक हिन्दी में और कोई अच्छा अनुवाद न निकलै तब तक पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री कृत विष्णुशास्त्री चिपलूनकर के 'भवभूति' नामक मराठी निबन्ध का हिन्दी अनुवाद पढ़ कर सन्तोष करना चाहिए।

महावीरप्रसाद द्विवेदी।

---

# महाराष्ट्रजाति का अभ्युदय

[ २ ]

सन् १७४०–४१ ईसवी में बाजीराव के पुत्र बालाजी बाजीराव मरट्ठों के मुखिया बनाए गए। इनके समान दुरदर्शी और राज कार्य्य में धुरन्धर जन महात्मा शिवाजी के पीछे और दूसरा कोई नहीं हुआ। उनके असाधारण बुद्धि-बल से महाराष्ट्रसमाज की छितरी हुई शक्तियां इकट्ठी होगई थीं। महात्मा रामदास और शिवाजी के जीवन के प्रधान व्रत का इन्होंने मानो उद्यापन किया था। बालाजी बाजीराव छितरे हुए मरट्ठों को बटोर सब ठौर महाराष्ट्र धर्म्म के प्रचार से समर्थ हुए थे। उनके समय में इस देश में

आर्य्यों की अनेक प्राचीन विद्याओं का विकाश हो आया था। वह प्रतिवर्ष वेद स्मृति, दर्शनशास्त्र, पुराण, ज्योतिष, वैद्यक प्रभृति विविध शास्त्र के सुपण्डितों की परीक्षा ले के उन्हें पुरस्कार दिया करते थे। इस कार्य्य में प्रतिवर्ष उन्हें १६ लाख के लग भग खर्चना पड़ता था। काशी, रामेश्वर, मिथिला आदि स्थानों से विद्यार्थी लोग अपनी अपनी विद्या की परीक्षा देने आया करते थे और पूना में परीक्षा की दक्षिणा ले अपनी अपनी नगरी को लौट जाया करते थे। इस कार्य्य के लिये पूना में एक बड़ा मकान बना हुआ था। प्रतिवर्ष ३० ४० हज़ार ब्राह्मण सन्तान परीक्षा देने आया करते थे। इससे देश में अच्छी शास्त्रचर्चा फैल गई थी। केवल शास्त्रीय पण्डित जनों ही पर महाराज की दृष्टि न थी, वरन् कवि, शिल्पी, चित्रकार और गाने बजानेवालों का भी सत्कार होता था। देश की कृषि वाणिज्य पर भी उनका अच्छा ध्यान रहा करता था।

पहिले दस वर्ष के बीच महाराष्ट्र राज्य की भीतरी शासनशृङ्खला और महाराष्ट्र शक्ति की दृढ़ता करके बालाजी ने साम्राज्य स्थापन का सुमहान् संकल्प किया था। मरहठों ने लगातार राजनीतिकुशल शासनकर्त्ता और सुचतुर सेनानायकों को पाकर अपनी अलौकिक बीरता से सारे जगत् को चकित कर दिया था। बालाजी के उपदेश के अनुसार ईसवी १७५२ से १७६१ तक लगातार भारत के भिन्न भिन्न स्थानो में लग भग ४२ ठौर बालाजी ने युद्ध किया था और उन सबमें बालाजी स्वयम् उपस्थित थे। अयोध्या, बिहार, बंगाले तक मुसलमानों की जड़ खोद, उत्तर में अटक से दक्षिण में रामेश्वर तक, अर्थात् हिमालय से समुद्र तक सब ठौरों में हिन्दू साम्राज्य स्थापन करने के लिये मरहठे बड़े ही व्यग्र हो रहे थे। इसीसे उन लोगो ने दक्षिण और उत्तर में हिन्दू रजवाड़ों से छेड़ छाड़ नहीं की थी, केवल उनसे छत्रपति की सार्व्वभौमत्व, स्वीकार करवा लिया था और उनसे कर लेने लगे थे। तीर्थक्षेत्रों में अयोध्या, प्रयाग, काशी और जगन्नाथपुरी में से मुसलमानी अधिकार छुड़ाने के लिये मरहटों ने बड़े परिश्रम किए थे। यहां तक उन लोगों ने किया था कि तीर्थस्थानों के बदले दूसरे स्थान दे के भी अपने पवित्र स्थानों को छुड़ा लिया था। दैववश कुछ स्थानों को मुसलमानों के हाथ से चाहे वे न भी छुड़ा सके, तौ भी हिन्दूमात्र को उनकी प्रशंसा करनी चाहिए। ऐसी प्रशंसनीय वीरता तो कदाच सूर्य्यवंशावतंश राणाओं ने भी नहीं की।

सन १७५० से १७६१ तक मरहठे जी जान से अपनी पूर्व्व प्रतिज्ञा का प्रतिपालन करते रहे और उन्होंने बहुत कुछ अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण भी कर दिखाया। उनके उस समय के कार्य्यों को स्मरण कर चित्त चकित होता है। बालाजी के चचेरे भाई श्रीमन्त भाउ साहेब ने भारत भूमि को छोड़ कनष्टण्टीनोपल तक जा के अपनी विजयपताका उड़ाई थी। अनेकों का तो यह विश्वास है कि यदि पानीपत की समरभूमि में अहमद शाह अबदली के युद्ध में मरहठों का भाग्य पल्टा न खाता और जो दैवी विड़म्बना न होती, तो कदाच भाउ साहेब की लालसा पूरी भी हो जाती तो कोई अचम्भे की बात न थी।

भारत के प्रायः सब ठौर वाले बालाजी को चक्रवर्त्ती मानने लगे थे। पञ्जाब, मालवा, नागपुर, विदर्भ, महाराष्ट्र, कर्नाटक और गुजरात प्रभृति स्थानों में उन्होंने अपनी जड़ जमा ली थी। बङ्गाला, राजपूताना और और छोटी मोटी बहुत सी रियासतों से बेउजर वे लोग चौथ उगाही लिया करते थे। मैसोर, हैदराबाद, माड़वाड़ और अयोध्या प्रभृति प्रदेशों के अधिपति उन्हें कर देते थे। दिल्ली के सिंहासन पर अपने मन के बादशाह को बिठला के उसे मानो कठपुतली सा बना रक्खा था। भारतवर्ष में उन्हें किसीका भी डर न रह गया था। एक प्रकार से भारतवर्ष भर उनकी मुट्ठी में होगया था। यदि कुछ दिनों तक यों ही

रहता तो निश्चय देश के बाहर और भीतर के वाणिज्य व्यापार पर भी मरहठों का ध्यान पड़ता। पर ईश्वर की इच्छा से वैसा न रहने पाया।

जब भारतवर्ष भर में मुसलमानी अमलदारी निकल हिन्दुस्थानी फैल गई तो इसपर मुसलमानों को बड़ी बिकलता हुई। जिस दिल्लीश्वर के प्रताप से एक दिन सारा भारतवर्ष कांपता था, जिसकी आज्ञा से महाराष्ट्रपति सम्भाजी मारे गए और उनके पुत्र शाहू सपरिवार कैद किए गए थे, समय के फेर से उन्हींके वंशधरों को मरहठों की मुट्ठी में होते देख मुसलमानों के जी में बड़ा ही दुःख हुआ। इसलिये, उन्होंने आपस में एका करना उचित समझा। मुसलमान आपकी फूट कुछ दिनों के लिये भूल मरहठों के बिपक्षी होगए और गुपचुप अहमदशाह अबदाली के पास भारत आक्रमण के लिये निवेदनपत्र भेजा। फिर से महम्मदी झण्डा उड़ाने की लालसा मुसलमानों के जी में हो आई। थोड़े ही दिनों में कुरुक्षेत्र के बड़े मैदान में, अहमदशाह, नजीब-खां रोहिला, शुजाउद्दौला, कुतबशाह, अहमदखां, दूँदेखाँ, प्रभृति रोहिला, पठान और दुर्रानी सर्दार अपनी अपनी चतुरङ्गिनी सेना ले ले के युद्ध लिये आ जमे।

इधर मरहठे भी अपना दल बल ले युद्ध के लिये आ डटे। दोनों ओर प्रायः ढाई लाख बीर बांकुरे अपने अपने भाग्य की परीक्षा के लिये आ भिड़े। दुर्भाग्यवश राजपूतानावाले राजपूत, जो बहुत दिनों से दिल्लीवाले बादशाहों के आधीन रह आए थे और उनको उनपर एक प्रकार की भक्ति हो गई थी, भीतर ही भीतर गुपचुप मुसलमानों की सहायता करने लगे। शुजाउद्दौला से मित्रता के हेतु उसकी भेदनीति के गुण से जाठ सर्दार सूरजमल युद्ध होने से कुछ ही पहिले मरहठों का साथ छोड़ मुसलमानों से जा मिले। इससे विबस हो महाराष्ट्रों को अपने ही बल का भरोसा कर विदेशी और विधर्म्मी बैरियों का सामना करना पड़ा। अपने धर्म्म की रक्षा के लिये एक लाख सत्तर हज़ार मरहठे अपने प्राण न्योछावर करने को प्रस्तुत होगए। युद्ध के पूर्व उन लोगों का उत्साह, विधर्म्मियों के प्रति विद्वेष, हिन्दूधर्म्म रक्षा के लिये अपना प्राण वारने का आग्रह, युद्ध का शोचनीय परिणाम प्रभृति विषय मल्हारराव हुलकर के आदेश से जो लिखा गया था, वह बड़ा ही मर्म्मस्पर्शी है। युद्ध होते होते दोनों दलवालों के जी में जब द्विविधा उठी तो एक बेर आपस में सन्धि होने की भी चर्चा छिड़ी थी। पर बाहुबल पर भूले हुए मरहठों ने सन्धि की उन शर्त्तों को न माना जो मुसलमानों ने चाहा था। अनेक लोक विध्वंशकारी उस युद्ध में यदि आपद्-काल में मरहठे सेनानी मुसलमानों की शर्त्तों को मान लेते और मौका पाके फिर उस सन्धि को तोड़ देते—जैसा प्रथम मरहठा युद्ध में पराजित अङ्गरेजों ने यह कहके कि "इस सन्धि के कागज पर कलकत्ते के (महाराष्ट्रीय पक्ष के पूना के) सर्दारों की साक्षी और सम्मति नहीं थी", प्रभृति उजर-दारी करके सन्धिभङ्ग कर दी थी—वैसे ही जो ये लोग भी करते तो भारतवर्ष के इतिहास में इतने थोड़े दिनों में ऐसा उलट फेर न हो जाता। परन्तु पूर्वोक्त वृत्तान्त लिखनेवाले कह गए हैं कि, कुरु पाण्डवों के युद्धक्षेत्र में प्राप्त होने के कारण मरहठों के हृदय में धर्म्मभाव की अधिक उत्तेजना हो उठी थी, इसीसे वे विधर्म्मी मुसलमानों की शर्त्तें न मान सके। जो हो, युद्ध अनिवार्य्य होगया। सन १७६१ ईसवी के प्रारम्भ में पानीपत की समरभूमि में महाराष्ट्रों के वैभव की पूर्णाहुति होगई! भारत में हिन्दू साम्राज्य स्थापन की उच्च आकांक्षा कुछ दिनों के लिये विलीन हुई!

युद्ध समाप्त होने पर मुसलमानों ने वीरता पर कुछ भी ध्यान न दे कैदी हिन्दू वीरों के शिर काट लिए। सिवाय इसके जो रसद ढोनेवाले दांतों में तिनका ले के उनकी शरण में गए थे, उन दीन जनों से भी उन निठुर मुसलमानों ने दया के पलटे पूरी निठुराई का बर्त्ताव किया। निठुर अफगानी हिन्दु सच्चे वीर धर्म्मावलम्बियों के मुण्डों का